(देश देशान्तरों मे प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

एक अंक ≡)

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पा०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७ | मथुरा, १ जौलाई सन् १९४६ ई० | अंक ७

तपस्या से ही अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त होता है।

भागीरथजी तप करके गङ्गा को मर्त्यलोक में लाये, पार्वतीजी ने तप करके शिव को वर रूप में पाया, ध्रुव ने तप करके अचल राज्य पाया, एक नहीं अनेकानेक प्रमाण इस बात के मौजूद हैं कि तप से ही सम्पदा मिलती है। मनोवांछाऐं पूर्ण करने का एक मात्र साधन तप ही है—परिश्रम एवं प्रयत्न ही है। क्या देव क्या असुर जिसने भी ऐश्वर्य पाया है, वरदान उपलब्ध किये हैं तप के द्वारा पाये हैं। अनन्त सम्पदाओं का ढेर अपने चारों ओर बिखरा पड़ा हो तो भी कोई उसे तप बिना नहीं पा सकता। समुद्र के अन्दर अतीत काल से अनेक रत्न छिपे पड़े थे। उनका अस्तित्व किसी पर प्रकट न था किन्तु जब देवता और असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया तो उसमें से चौदह अमूल्य रत्न निकले। यदि मन्थन न किया जाता तो चौदह क्या चौथाई रत्न भी किसी को न मिलता। प्रयत्न, परिश्रम और कष्ट सहन करने से ही किसी ने कुछ प्राप्त किया है। अकस्मात छप्पर फाड़कर मिल जाने के कुछ अपवाद कहीं कहीं देखे और सुने जाते हैं, परन्तु यह इतने कम होते हैं कि उन्हें सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पूर्व जन्मों का सचित पुण्य एक दम कहीं प्रकट होकर कुछ सम्पदा अकस्मात उपस्थित करदे ऐसा होना असम्भव नहीं है, कभी कभी ऐसा हो जाता है कि किन्हीं व्यक्तियों का बिना परिश्रम के भी कुछ चीज मिल जाती है परन्तु इसे भी मुफ्त का माल नहीं कहा जा सकता। पूर्व संचित पुण्य भी परिश्रम और कष्ट सहन द्वारा ही प्राप्त हुए थे। इन भाग्य से अकस्मात प्राप्त होने वाले लाभों में भी अप्रत्यक्ष रूप से परिश्रम ही मुख्य होता है। भाग्य का निर्माण तपस्या से ही होता है।

'अखण्ड-ज्योति' द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखकों का गहरा अनुभव एवं अनुसंधान है। इतने गहन विषयों पर इतना सुलभ साहित्य अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है। यह पुस्तकें पाठक की जीवन दिशा में उथल पुथल उत्पन्न कर देने की दैवी शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हैं। इनमें से जो पुस्तकें आपने अभी तक नहीं पढ़ीं, उन्हें आज ही मँगा लीजिये।

१—मैं क्या हूं ?	।=)	२८—ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग	।=)
२—सूर्य चिकित्सा विज्ञान	।=)	२९—यम और नियम	।=)
३—प्राण चिकित्सा विज्ञान	।=)	३०—आसन और प्राणायाम	।=)
४—परकाया प्रवेश	।=)	३१—प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि	।=)
५—स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या	।=)	३२—तुलसी के अमृतोपम गुण	।=)
६—मानवीय विद्युत के चमत्कार	।=)	३३—आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान	।=)
७—स्वरयोग से दिव्य ज्ञान	।=)	३४—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा	।=)
८—भोग में योग	।=)	३५—ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग	।=)
९—बुद्धि बढाने के उपाय	।=)	३६—हस्तरेखा विज्ञान	।=)
१०—धनवान बनने के गुप्त रहस्य	।=)	३७—विवेक सतसई	।=)
११—पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि	।=)	३८—संजीवनी विद्या	।=)
१२—वशीकरण की सच्ची सिद्धि	।=)	३९—गायत्री की चमत्कारी साधना	।=)
१३—मरने के बाद हमारा क्या होता है	।=)	४०—महान जागरण	।=)
१४—जीव जन्तुओं की बोली समझना	।=)	४१—तुम महान हो	।=)
१५—ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ?	।=)	४२—गृहस्थ योग	।=)
१६—क्या धर्म ? क्या अधर्म ?	।=)	४३—अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति	।=)
१७—गहना कर्मणोगति	।=)	४४—घरेलू चिकित्सा	।=)
१८—जीवनकी गूढ गुत्थियोंपर तात्विक प्रकाश	।=)	४५—बिना औषधि के कायाकल्प	।=)
१९—पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा	।=)	४६—पंच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगोंका निवारण	।=)
२०—शक्ति संचय के पथ पर	।=)	४७—हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ?	।=)
२१—आत्म गौरव की साधना	।=)	४८—विचार करने की कला	।=)
२२—प्रतिष्ठा का उच्च सोपान	।=)	४९—दीर्घ जीवन के रहस्य	।=)
२३—मित्र भाव बढाने की कला	।=)	५०—हम वक्ता कैसे बन सकते हैं	।=)
२४—आन्तरिक उल्लास का विकाश	।=)	५१—लेखन कला	।=)
२५—आगे बढने की तैयारी	।=)	५२—प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार	।=)
२६—आध्यात्म धर्म का अवलम्बन	।=)	५३—विचार संचालन विद्या	।=)
२७—ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन	।=)	५४—नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा	।=)

कमीशन देना कतई बन्द है। हां आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकें लेने पर रजिस्ट्री पार्सल का खर्च ग्राहक के जिम्मे होगा।

मथुरा १ जौलाई सन् १९४६ ई०

संतोष का तत्व।

'सम' उपसर्गपूर्वक 'तुष-प्रीतौ' धातु से संतोष शब्द बना है। प्रीति शब्द अर्थ है प्रसन्नता। अमरकोश के प्रथम काण्ड का काल वर्गका २४ वां श्लोक देखिये-'मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोद संमदाः' इससे स्पष्ट है कि संतोष का अर्थ प्रसन्नता, खुशी आनन्द है। जैसी भी भली बुरी परिस्थिति सामने हो उसमें प्रसन्न रहना, सन्तोष का तात्पर्य है।

आज कल सन्तोष का मतलब समझा जाता है, निठल्ले बैठे रहना, कूड़ा कचरा खाना पर हाथ पांव न हिलाना, उद्योग न करना, पुरुषार्थ से इनकार करना, पराश्रित रहना, कहीं से किसी प्रकार जो कुछ मिल जाय उसी में काम चला लेना, उन्नति का प्रयत्न न करना, भाग्य के भरोसे बैठे रहना, आपत्तियोंके निवारण की कोशिश न करना। आम तौर से सन्तोष का यही अर्थ किया जाता है। यह अर्थ का अनर्थ करना है। योग शास्त्र, धर्म और आध्यात्म विज्ञान जब से हरामखोरों के गन्दे हाथों में पड़ा है तब से उसकी ऐसी ही दुर्गति की गई है। घोर तामस में डूबे हुए अकर्मण्य और आलसी लोगों ने अपनी हीनता और नीचता को ब्रह्म विद्या की आड़ में छिपाने की इच्छा से उस महा विज्ञान की ही दुर्गति कर डाली। इसका एक उदाहरण सन्तोष सम्बन्धी अर्थ का अनर्थ हमारे सामने मौजूद है।

उद्योग करना, प्रयत्न जारी रखने, निरन्तर ऊँचे चढना, आगे बढना और ऊँची परिस्थितियां प्राप्त करने की चेष्टा करना मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है. इसमें कोई भी सिद्धान्त या सूत्र आज तक बाधक नहीं हुआ और न आगे हो सकता, ईश्वरीय नियम में मनुष्य के बनाये हुए सिद्धान्त रुकावट नहीं डाल सकते। यदि सन्तोष के अनर्थ पूर्ण भाव को अपनाया जाय तो दरिद्री, रोगी, पापी, अज्ञानी, अत्याचारी, दुखी सबको अपनी अपनी दशा में ही पड़ा रहना होगा। स्वर्ग और मुक्ति-जो अत्यन्त पुरुषार्थ के फल हैं, उनका प्राप्त होना तो दूर साधारण जीवनका आनन्द लेना भी दुर्लभ हो जायगा। अहदी और अपाहिजों की तरह वे 'सन्तोषी' लोग अन्धकार पूर्ण तामसिक परिस्थितियों में पड़े पड़े सड़ते रहेंगे।

हमें असत को छोड़कर सत् की ओर बढना होगा। सन्तोष के झूँठे अनर्थ को छोड़कर सच्चे अर्थ को ग्रहण करना होगा। आनन्दित रहना हर घड़ी प्रसन्न रहना, बुरी दुखदायी परिस्थिति सामने हो तो भी खिन्न न होना, यही सन्तोष का सारांश है। हर हालत में प्रसन्न रहना, मुसकराते रहना, प्रफुल्लित रहना एक ऐसा उच्च आध्यात्मिक गुण है जो पर्वत के समान विपत्ति को राई सा हलका बना देता है और नसों में उत्साह की बिजली का संचार करता रहता है। अकसर देखा जाता है कि कोई अप्रिय घटना या समस्या सामने आने पर लोग बहुत घबरा जाते हैं, दुखी होकर रोने पीटने लगते हैं और अपना मानसिक सतुलन खोकर किंकर्तव्य विमूढ होजाते हैं। इन परिस्थितियों में उसकी बुद्धि इतनी कुंठित हो जाती है कि कोई ठीक मार्ग निर्धारित नहीं कर पाती, उस विपत्ति से छुटकारा पाने और क्षति पूर्ति के साधन जुटाने के लिये स्वस्थ और शान्त मन की आवश्यकता है, पर जिसका मन उलझन में पड़ा हुआ दिग्भ्रान्त

हो रहा है वह भला किस प्रकार सही मार्ग ढूँढ सकता है ? कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती एक के पीछे अनेक दुख चिपके आते हैं, कारण यह ही है कि अस्वस्थ बुद्धि के निर्णय एवं कार्य अनुचित होते हैं, फल स्वरूप उनसे गांठ और भी ज्यादा उलझती जाती है। यदि सन्तोष का अभ्यास किया जाय बुरी घडी में भी विचलित न होने की आदत हो तो वह कठिनाई जो सामने आई थी आसानी से हल की जा सकती है, क्षति पूर्ति का मार्ग ढूंढा जा सकता है, नई कठिनाई पैदा होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

जो वस्तुऐं प्राप्त हैं उनका प्रसन्नता पूर्वक उपभोग करना उनमें रस लेना और ईश्वर की देन समझ कर सिर माथे पर लेना यह सन्तोष का लक्षण है। कर्म करते समय अधिक की इच्छा करना और फल भोगते समय सन्तुष्ट रहना यही संतोष की नीति है। जो भोजन परोस कर सामने आ गया है और उसे बदला नहीं जा सकता तो उचित है कि उसे शिर माथे पर रखकर अमृत मय व्यंजनों की भावना से ग्रहण करें। यदि विवाह हो चुका है और किसी स्त्री को जीवन सङ्गिनी बनाया जा चुका है तो यही उचित है कि जैसी भी कुछ काली कुबडी वह है, अप्सरा समझ कर स्नेह किया जाय कठिन परिश्रम के बाद जो मजूरी मिली है उस पर प्रसन्न रहा जाय। जब काम करने का समय हो। जब ऊंची और अच्छी स्थिति प्राप्त करने का समय हो, तब ऊंची और अच्छी स्थिति प्राप्त करने का जी तोड़ उद्योग करना आवश्यक हैं, पर जब कि काम करने का अवसर समाप्त हो गया और कोई निश्चित परिणाम सामने आ गया है जिसका कि हटाया जाना असंभव है तो यही उचित है कि कुड़-कुड़ाना, झुंझलाना, भाग्य को कोसना, छोड़ कर सन्तोष का घूंट पिया जाय, क्योंकि यह कुढ़न निरर्थक है। इससे मानसिक विक्षेप बढ़ सकता है और निराशा एवं आत्म हीनता की भावनाऐं बल पकड़ सकती हैं, इससे लाभ कुछ न होगा। हानि ही अधिक रहेगी। इस हानि से बचने के लिये एक बहुत ही उत्तम ढाल अपने पास है और वह है सन्तोष।

'भाग्य में जो लिखा है, वह होकर रहेगा, विधना के अङ्क मिट नहीं सकते, दैव इच्छा बलीयशी, सन्तोषी सो सदा सुखी' यह उक्तियाँ प्रयोग करने का ठीक समय वह है जबकि कोई इच्छा से न्यून, हलका या विपरीत परिणाम सामने आवे। चूंकि हर एक की मनोवांछाऐं सदैव पूरी नहीं होती हैं, असफलता या अल्प सफलता मिलने के भी प्रसङ्ग आते हैं उन अप्रिय प्रसङ्गों के सामने आने पर भी चित्त की प्रसन्नता बनाये रहने के लिये, सन्तोष भाग्य आदि की व्यवस्था है। जो सिद्धान्त जिस समय जिस कार्य के लिए है उसे उसी में प्रयोग करना चाहिए। कर्तव्य करने में सन्तोष कर बैठना तो ऐसा है जैसे कपड़ा काटने की कैंची का उपयोग अपनी नाक काटने में कर लेना।

सन्तोषी को प्रसन्न रहना चाहिये। हर घडी अपने को आनन्दित बनाये रहना चाहिये। घर में, व्यापार में, परदेश में, मित्रों में, शत्रुओं में, निन्दा में, प्रशंसा में, कष्ट में, सम्पदा में, लाभ में, हानि में हर एक परिस्थिति में चहरे पर प्रसन्नता छाई रहनी चाहिये। हर बात के साथ साथ मुसकराहट की किरणें निकलना चाहिये, आत्मा की महानता और दिव्यता का अनुभव करते हुए सदैव गौरवान्वित रहना चाहिए, यही सन्तोष का मर्म है। पाठकों को सन्तोषी होना चाहिये, जिसमे अपना आनन्दमय कोष विकसित होता रहे।

——※——

—आपकी बाह्य परिस्थिति कितनी ही सामान्य क्यों न हो, यदि आपका अन्तःकरण असामान्य है तो निश्चय जानिये कि आप अपनी बाह्यस्थिति को भी असामान्य बना सकेंगे।

× × ×

—आप यह कभी न सोचिये कि एक मैं ही पूर्ण हूँ, मुझ में ही सब योग्यताऐ हैं, मैं ही सब कुछ हूँ, सबसे श्रेष्ठ हूँ, वरन् आप यह सोचिये कि मुझ में भी कुछ है, मैं भी मनुष्य हूँ, मेरे अन्दर जो कुछ है उसे मैं बढा सकता हूँ, उन्नत और विकसित कर सकता हूँ। × ×

चतुर्मुखी-ब्रह्मा।

(३)

विष्णु—संसार में एक संतुलन शक्ति भी काम कर रही है। जो किसी वस्तु की अतिवृद्धि को रोककर उसे यथास्थान ले आती है। संसार की सुन्दरता और वैभव शालीनता को वह कुरूपता और विनाश से बचाती है। प्रजनन शक्ति को ही लीजिये। एक-एक जोड़ा कई कई बच्चे पैदा करता है, यदि यह वृद्धि पीढ़ी दर पीढ़ी निर्बाध गति से चलती रहे तो थोड़े ही दिन में सारी पृथ्वी इतनी भर जाय कि संसार में प्राणियों को खड़ा होने के लिये भी जगह न मिले। मछली एक वर्ष में करीब सत्रह हजार अंडे देती है, मक्खी, मच्छड़, जैसे कीट पतंग एक हजार से लेकर साठ हजार तक अंडे प्रति वर्ष देते हैं। वे अंडे एक दो सप्ताह में ही पककर बच्चे की शकल में आजाते हैं और फिर दो चार हफ्ते बाद ही वे भी अंडे देने लगते हैं। इनकी एक ही साल में प्राय आठ पीढ़ी हो जाती है, यदि यह सब बच्चे जीवित रहें तो दस पांच साल में ही सारा संसार उनमें से एक जाति के रहने के लिये भी पर्याप्त न रहेगा, चींटी, दीमक, टिड्डी आदि कीड़े भी बड़ी तेजी से बढ़ते है। सुअर, बकरी आदि भी तेजी से प्रचुर संतान वृद्धि करते हैं। एक जोड़ा स्त्री-पुरुष भी औसतन आठ दस बच्चे पैदा करता है। यह अभिवृद्धि यदि न रुके तो ससार के सम्मुख दस पांच वर्ष में ही बड़ी विकट परिस्थिति उत्पन्न होकर खड़ी हो सकती है। परन्तु लाखों करोड़ों वर्ष प्राणियों को इस पृथ्वी पर हो हुए हो गए, ऐसी परिस्थिति कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। सृष्टि की संतुलन शक्ति उस विषमता को उत्पन्न होने से रोके रहती है। दुर्भिक्ष, भूचाल, महामारी, युद्ध, तथा किसी न किसी दैवी प्रकोप द्वारा प्राणियों की प्रजनन शक्ति से उत्पन्न होने वाले खतरे का निराकरण करती रहती है।

रात्रि का अन्धकार एक सीमा तक बढता है। उस बाद को प्रकृति रोकती है और पुनः दिन का प्रकाश लाती है। मध्यान्ह तक सूर्य की तेजी बढती है फिर यह घटने लगती है। समुद्र में ज्वार आते हैं, फिर थोड़े समय बाद उसका प्रतिरोधी भाटा आता है। चन्द्रमा घटते घटते क्षीण होता है। फिर बढने लगता है। गर्मी के बाद सर्दी और सर्दी के बाद गर्मी का मौसम आता है। मरने वाला जन्मता है और जन्मने वाला मृत्यु की तैयारी करता है। सृष्टि के सौन्दर्य का क्रम यथावत चला आता है, उसका बैलेन्स बराबर कायम रहता है-संतुलन बिगडने नहीं पाता।

पुराणों में ऐसे वर्णन आते हैं कि देवताओं को जब असुर सताते हैं तो वे इकट्ठे होकर विष्णु भगवान् के पास जाते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हमारी रक्षा कीजिये। कई पुराणों में ऐसी कथाएं मिलती हैं कि पृथ्वी पर जब अधर्म बढा तो धरती माता गौका रूप धारण कर विष्णु भगवान् के पास गई और प्रार्थना की कि अब मुझसे पाप का बोझ नहीं सहा जाता, मेरा उद्धार कीजिए। देवताओं की रक्षा करने तथा पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु भगवान अवतार धारण करते हैं। गीता में भी ऐसी ही लिखा है (यदा यदा हि धर्मस्य ... तदात्मानम् सृजाम्यहम्) बुराइयों में यह गुण है कि वे आसानी से और तेजी के साथ बढती हैं। पानी ऊपर से नीचे की ओर बड़ी तेजी से स्वयंमेव दौड़ता है पर यदि उसे नीचे से ऊपर चढाना हो तो बड़ा प्रयत्न करना पड़ेगा। पत्थर को ऊपर से नीचे की ओर फेंके तो जरा से संकेत के साथ वह तेजी से नीचे गिरेगा और अगर बीच में कोई रोकने वाली चीज न आवे तो सैकड़ों मील नीचे गिरता चला जायगा। परन्तु यदि उस पत्थर को ऊपर फेंके तो बड़ा जोर लगाकर फेंकना पड़ेगा सो भी थोड़ी ऊँचाई तक जायगा फिर गिर पड़ेगा इसी प्रकार बुराई के मार्ग पर पतन की ओर मन तेजी से गिरता है पर अच्छाई की ओर कठिनाई से चढता है। लोगों का झुकाव पापकी ओर अधिक होने के कारण थोड़े ही समय में पाप छाजाता है और फिर उसे दूर करने के लिए संतुलन ठीक करने के लिये इस विष्णु शक्ति को किसी न किसी रूप में प्रकट होना पड़ता है, उस प्राकट्य को 'अवतार' कहते हैं।

शरीर में रोगों के विजातीय विषैले परमाणु इकट्ठे होजाने पर रक्त की जीवनी शक्ति उत्तेजित होती है और उन विषैले परमाणुओं को मार भगाने के लिए युद्ध आरम्भ कर देती है। रक्त के श्वेत कणों और रोग कणों में भारी मारकाट मचती है, खून खच्चर होता है। इस संघर्ष को बीमारी कहते हैं बीमारी में पीड़ा, फोड़ा, पीव, पसीव, दस्त, उलटी जलन आदि के लक्षण होते हैं। युद्ध में चोट लगती है, दर्द होता है यही बीमारी की पीड़ा है, खून खच्चर होता है, यही पीव, दस्त आदि हैं। बीमारी का प्रयोजन शरीर को निर्दोष बनाना है। अवतार शक्ति का भी यही कार्य होता है। जब रावण, कंस, हिरण्यकश्यप सरीखे कुविचारों के प्रतिनिधि अधिक बढ जाते हैं तो पापोंकी प्रतिक्रिया स्वरूप अन्तरिक्ष लोकों में हलचल मचती है और उस विषमता को हटाने के लिये अवतार प्रकट होता है। जब ग्रीष्मऋतु का ताप असह्य हो जाता है तो उसे शान्त करने के लिये मेघ मालाऐं गर्जती हुई चली आती हैं। पापों की अतिवृद्धि का नियमन करने के लिये वैष्णवीसत्ता अवतार धारण करके प्रकट होती है और भीषण संघर्ष उत्पन्न करके शान्ति स्थापित करती है। "परित्राणाय साधूनाम विनाशायश्च दुष्कृताम्" अवतार का यही उद्देश्य होता है। धर्म की संस्थापन के लिये वह बारबार प्रकट होता है।

अवतार समिष्टि आत्मा का परमात्मा का प्रतीक है। सभी आत्माओं की एक सम्मिलित सत्ता है जिसे 'विश्वमानव' या समाज की सम्मिलित आत्मा कहते हैं। यही परमात्मा है। एक मनुष्य यह चाहता है कि मैं सुख पूर्वक रहूँ मेरे साथ में सब प्रेम, भलाई, एवं सहयोग का बर्ताव करें कोई यह नहीं चाहता है कि मेरे साथ चोरी, हिन्सा, ठगी, कठोरता, अन्याय का बर्ताव करें। यही इच्छा 'विश्वमानव' की समिति आत्मा—या परमात्मा की है। परमात्मा की-विश्वमानव की-इच्छा को ही धर्म कहते हैं। अवतार धर्म की रक्षा के लिए होता है। अधर्म अर्थात् विश्वमानव की इच्छाओं के प्रतिकूल कार्य जब संसार में अधिक बढ़ जाते हैं तो उसे दूर करने के लिए विश्वमानव के अन्तस्तल में प्रतिक्रिया होती है और विरोध का उफान उबल पड़ता है। इस उफान को अवतार के नाम से पुकारा जाता है।

अवतार एक अदृश्य प्रेरणा है। सूक्ष्म वातावरण में परमात्मा की इच्छा का आवेश भर जाता है। जैसे आकाश में आंधी छाई हुई हो और उसी समय पानी बरसे तो वर्षा की बूँदें उस आंधी की धूलि से मिश्रित होती हैं। बसन्त ऋतु में प्रकृतिके सूक्ष्म अन्तराल में 'काम क्षोभ' का आवेश आता है उन दिनों सभी नर नारियों में जीव जन्तुओं में कामेच्छा फूट पड़ती है। भय, क्रोध, हिन्सा, साम्प्रदायिक राजनैतिक तनाव, घृणा,तथा सत्कर्मों का भी एक लहर आती है वातावरण जैसा बन जाता है वैसे ही काम बहुत बड़ी संख्या में होने लगते हैं। इसी प्रकार विश्वमानव-परमात्मा की इच्छापूर्ण करने के लिए सूक्ष्मलोक में अदृश्य वातावरण में आवेश आता है। उस आवेश में प्रेरित होकर कुछ विशिष्ट पुण्यात्मा,जीवन मुक्त महापुरुष संसार में आते हैं और परमात्मा की इच्छा को पूरा करते हैं। एक समय में अनेकों अवतार होते हैं, किसी में न्यून किसी में अधिक शक्ति होती है। इस शक्ति का माप करने का पैमाना 'कला' है। बिजली को नापने के लिये 'यूनिट' गर्मी को नापने के लिये 'डिग्री' लम्बाई को नापने के लिये 'इंच' दूरी को नापने के लिये मील जैसे होते हैं वैसे ही किस व्यक्ति में कितना अवतारी अंश है इसका नाप 'कला' के पैमाने से होती है। त्रेता में परशुरामजी और श्रीरामचन्द्रजी एक ही समय में दो अवतार थे परशुरामजी को तीन कला का और रामचन्द्र जी को बारह कला का अवतार कहा जाता है। यह तो उस समय के विशिष्ट अवतार थे। वैसे अवतार का आवेश तो अनेकों में था बानरों की महती सेना को तथा अनेकों अन्य व्यक्तियों को अवतार के समतुल्य कार्य करते हुये देखा जाता है।

इस प्रकार समय समय पर युग-युग में आवश्यकतानुसार अवतार होते हैं। बड़े कार्यों के लिये बड़े और छोटे कार्यों के लिये छोटे अवतार होते

हैं। सृष्टि को सन्तुलन करने वाली विष्णुशक्ति वैसे तो सदा ही अपनी क्रिया जारी रखती है। पर बड़ा रोग इकट्ठा होजाने पर बड़ा डाक्टर भेजती है। उस बड़े डाक्टरों को उनके महान् कार्यों के अनुरूप यश एवं सम्मान प्राप्त होता है। अवतारी महापुरुषों की पूजा यथार्थ में विष्णुशक्ति की पूजा है जिसके कि वे प्रतीक होते हैं।

लक्ष्मीपति विष्णु सृष्टि की सुन्दरता की, सम्पन्नता की, सद्बुद्धि की और सात्विकता की रक्षा करते हैं। लक्ष्मीजी के चार हाथ, सुन्दरता, सम्पन्नता, सद्बुद्धि और सात्विकता के प्रतीक हैं। समस्त प्राणियों की समिष्टि-सम्मिलित-आत्मा-लक्ष्मी है, यह लक्ष्मी विष्णु का अर्धाङ्ग है। परमात्मा की सत्ता जीवों को आत्मा में समाई हुई है, ससार का नियमन करती है साथ साथ लक्ष्मी की-विश्वमानव की इच्छा की-रक्षा भी करती है। लक्ष्मी विष्णु से अभिन्न है।

विष्णु के उपासक-वैष्णव वे हैं। जो विश्व मानव की इच्छाओंके अनुकूल कार्य करनेमें अपनी शक्ति लगाते हैं। मीरा का प्रसिद्ध भजन है— "वैष्णव जनतो तेने कहिये जे पीर पराई जाने रे।" समाज का लाभ, संसार की सेवा, विश्व की श्री वृद्धि, विश्वमानव की सुख शान्ति के लिए सच्चे अन्तःकरण से हर घड़ी लगे रहने वाले मनुष्य असली वैष्णव हैं। विष्णु की इच्छा ही उन वैष्णवों को इच्छा और विष्णु की कार्य प्रणाली ही उनकी कार्य प्रणाली होती है। वे पापको घटा कर धर्म का स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। जनता जनार्दन को विष्णु रूप समझकर लोक सेवा में, विष्णु पूजा में, प्रवृत्त रहते हैं।

—क्रमशः

जब कोई मनुष्य चुप रहता है तब या तो मूढ होता है या ज्ञानी। जब मनुष्य बहुत बक बक करता है तब या तो भोला होता है या अहंकारी। जब मनुष्य बहुत मधुर शब्द बोलता है तब या तो वह धूर्त होता है या सुसंस्कृत।

× × ×

विचारणीय तत्व !

—※—

वेद की अपेक्षा सत्य, सत्य की अपेक्षा इन्द्रिय निग्रह, इन्द्रिय निग्रह की अपेक्षा दान, दान की अपेक्षा तपस्या, तपस्या की अपेक्षा वैराग्य, वैराग्य की अपेक्षा आत्म ज्ञान, आत्मज्ञान की अपेक्षा समाधि और समाधि की अपेक्षा ब्रह्मप्राप्ति उत्कृष्ट है।

ज्ञान ही परमब्रह्म है एवं साधना सर्वोत्तम मार्ग। जो व्यक्ति निगूढ भाव से ज्ञानतत्व को जानने में समर्थ होता है, उसकी समस्त कामनाएँ परिपूर्ण हो जाती हैं।

काल समस्त प्राणियों को विनष्ट कर देता है किन्तु जिसके प्रभाव से वह काल भी विनष्ट हो जाता है, उसको कोई भी नहीं जान सकता। वह परम स्वरूप परमात्मा ऊपर, बीच में, नीचे, व निर्जन स्थानों में नहीं दिखाई पड़ता है, क्योंकि वह सारे लोक उसी के अन्तस्थ है, उसका बहिर्भाग कुछ नहीं है।

जिस पुण्यात्मा पुरुष ने कभी कोई पाप नहीं किया, उसकी अपेक्षा घोर पापी के पश्चाताप की महिमा कहीं अधिक है, क्योंकि जिन्होंने पापमय जीवन की कटुता का कभी अनुभव नहीं किया; उनके लिये दूर रहना कुछ कठिन कार्य नहीं है।

प्रार्थना का द्वार किसी समय खुला रहता है और किसी समय बन्द, पर पश्चाताप का द्वार तो सदा अनावृत रहता है।

आज ही तुम अपने पापों का प्रायश्चित कर लो, क्योंकि कल तुम्हारी मृत्यु भी हो सकती है।

सद्गुणों में सब से अधिक आवश्यक वह गुण है, जो अहंकार को दूर करता है, और वह सद्गुण है—विनम्रता।

आइये आपका मनोविश्लेषण करें।

(डा० रामचरण महेन्द्र एम. ए. डी. लिट्)

आपकी सामान्य बुद्धि :—

यदि आपमें जल्दी जल्दी पढ जाने की आदत है, तो इसका यह अर्थ है कि मन में एकाग्रता एवं ग्रहण शक्ति का अभाव है। आप किसी तत्व का ऊपरी ज्ञान ही लेना चाहते हैं, उसके अन्त तक बैठ कर समूचा तत्व नहीं ग्रहण करना चाहते। अध्ययन में अधिक समय दीजिए और तभी आगे पढिये, जब आप यह समझते हों कि आपने प्रारम्भिक अंश अच्छी तरह समझ लिया है और आप निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं।

यदि आपको पढने लिखने या समझने में कठिनाई प्रतीत होती है तो शायद आपकी भावना (Feelings) उत्तेजित है विचार भावना संकल्प इन तीनों में आपकी भावना उत्तेजित हो सकती है और वही विचार धारा में व्यवधान उपस्थित कर सकती है। भावना में बह जाइये, कल्पना के साथ मत उड़िये। वरन् मस्तिष्क को कठोर चिंतन में लगाकर भावना को वश में कीजिए और विचार को विकसित होने का अवसर दीजिए सर्वाङ्गीण विकास ही सर्वोत्तम है।

यदि आपको अपने पढने लिखने, ज्ञानार्जन करने, परीक्षा पास करने में सामान्य (Averge) रूप से अध्ययन करना पड़ा, न आपने अधिक परिश्रम किया, न समय बरबाद किया, तो इसका अर्थ है कि आपका प्रारम्भिक मानसिक विकास ठीक रहा है। किन्तु फिर अपने से पूछिए कि परीक्षा पास करने के पश्चात् भी उसी रफ्तार से बुद्धि का विकास चल रहा है या नहीं? यदि अब भी आप निश्चित समय अपने दैनिक व्यापार कारबार के अतिरिक्त अध्ययन, चिंतन तथा मनन में लगाते हैं, तब आपका बौद्धिक विकास ठीक चल रहा है। आगे आशा है।

यदि स्कूल के दिनों में मानसिक प्रतियोगिताओं, परीक्षाओं तथा कक्षा के पाठों में आपको सम्मान मिलता रहा है, तो संभव आपने अपने व्यक्तित्व के अन्य अंशों की तरफ समुचित ध्यान नहीं दिया है। क्या शारीरिक तथा आत्मिक विकास, सामाजिक व्यवहार इत्यादि भी उसी अनुपात से हुआ है? यदि नहीं तो आपका व्यक्तित्व एकांगी है। उसके बहुत से अंश अविकसित रह गए हैं। इसके विपरीत यदि आप स्कूल में फिसड्डी रहे, तो उसका मतलब है कि आपने अपना मन बहुत से अन्य कार्यों में लगाये रक्खा है। सोचिये कि वे कौन कार्य थे? किसकी कुसङ्गति से लगे? अब उनसे छुटकारा मिला या अब भी वे आपकी शक्तियों को ग्रसते जा रहे हैं? शायद आप स्कूल के दिनों में हीनत्व की भावना से ग्रसित रहे? बड़े विद्यार्थी आपको सताते रहे? या निंद्य कार्यों में सलग्न रहे? आपने मजेदारी के कार्य अधिक किये और लाभ के कम? अब समय है कि आप अपने मानसिक विकास की कमी को पूरा कर डालें और व्यक्तित्व के समस्त पहलू विकसित कर चरित्र को सर्वाङ्गपूर्ण (Well-rounded character) बनायें।

यदि आप स्कूल के दिनों में अध्ययन के अतिरिक्त कार्यों में भी लगे रहे और उत्तरदायित्वको अच्छी तरह संभाले रहे, तब आपका विकास ठीक रहा। आप सामान्य से कुछ ऊँचे रहे और भविष्य में आप सर्वाङ्ग पूर्ण व्यक्तित्व बना सकेंगे।

यदि स्कूल के दिनों में लेखनी हाथ में लेकर जहां देखा कुछ न कुछ लिख दिया, दस्तखत कर दिये, या व्यर्थ कागज खराब करते रहने की आदत आप में थी, अपनी खुद की पुस्तक में या दूसरे की पुस्तक में जो मन में आवे, वही आप लिख डालते थे, तो उसका अर्थ यह था कि आपमें आत्मसंयम की बहुत कमी थी। दिखावे की, शान दिखाने तथा अहं के विस्तार की भावना तीव्र थी। आप दूसरे पर अपनी विद्वत्ता दिखाना चाहते थे, जबकि वास्तव में वह आत्म प्रवचना के अतिरिक्त कुछ न था।

यदि बचपन में आप पुस्तकों को फाड़ते रहे हैं, उन्हें पांव से छू देने पर दुःखी नहीं हुए हैं, उनके पृष्ठों को मोड़ते, फाड़ते, मोसते, गन्दा करते रहे हैं, जहां देखा पुस्तक पडी रही. गन्दी होती रही—तो इसका अर्थ है कि विद्या के प्रति आपका विशेष अनुराग प्रवृत्त न थी। यही कारण है कि आपने कुछ न सीखा, न पढा लिखा। आपकी बुद्धि अन्य कार्यों में लगी रही, ऊँचे विषयों की ओर उसकी प्रवृत्ति न रही।

यदि आप कक्षा के साथ चलते रहे, रोज का कार्य रोज निपटाते रहे, तो आपने वही किया जिसकी आपसे आशा की जाती थी। आपमें प्रारम्भ से ही उत्तरदायित्व की भावना दृढ रही और कार्य भार सम्भालने की योग्यता आपमें तभी से थी।

यदि आपके अध्यापक आपको अच्छा, सुशील और आज्ञाकारी शिष्य बताते रहे, तो शायद आप बहुत मृदु, नर्म स्वभाव के रहे, उनसे अत्यधिक दबते रहे। आपके गुप्त मन में थोड़ा भय, थोडी लज्जा, हीनता की भावना रही। आपने अपने व्यक्तित्व को साहस से विकसित न किया। यदि आपके अध्यापकों ने आपके विषय में कुछ भी न कहा, तो आपकी प्रगति ठीक (सामान्य) रही। आप ठीक रफ्तार से चले और भविष्य में भी आप से वैसी ही आशा की जा सकती है।

यदि आप अन्य विषयों को छोड़कर एक या कुछ विशेष विषयों में दिलचस्पी लेते रहे, तो आपके व्यक्तित्व के कई पहलू अविकासित छूट गये, अन्य आवश्यक बातों का ज्ञान आपको न हुआ, और थोड़े से परिश्रम से डरकर आप सकुचित रह गए। यह तंगदिली बुरी है। जीवन तो कडुवे मीठे अनुभवों की चटनी है। मजेदार और बेमजे—दोनों ही प्रकार के तत्वों का योग है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व में सभी तत्वों का अनुपात से विकास होना चाहिये। चाहे आप पसन्द करें, या न करें—सभी तत्वों का, अपने सभी पुरुषोचित गुणों का विकास होना चाहिए।

यदि आप प्रत्येक कार्य का ध्यानपूर्वक सतर्कता से निरीक्षण करते हैं, तब आप अपने कार्यों पर अवलम्बित रह सकते हैं। आप भूल चूक न करेंगे, यदि हड़बड़ाकर करने के आदी हैं तो मन में शान्ति का अभाव है। वह अनेक चीजों, कार्यों, प्रवृत्तियों में बँटा हुआ है। इस प्रवृत्ति से भविष्यमें आप हानि उठा सकते हैं। बातें करने से पूर्व उसे खूब सोच लिया कीजिए। इसी प्रकार जो कछ हाथ में लें उसीमें सूई की तरह गढ़ जाया कीजिये।

यदि आप अपने व्यापार, उद्देश्यों, मनोरथोंमें सफल होते रहे हैं तो आप तीव्र बुद्धि सम्पन्न हैं और भविष्य में इसी के सहारे चल सकते हैं मन से अपनी शक्तियों के प्रति सभी संशय दूर कर दीजिए यदि आप इनमें असफल होते रहे तो असफलता के दो मुख्य कारण हैं—या तो यह कार्य आपकी शक्तियों के अनुकूल नहीं है अन्यथा आपमें विश्वास की कमी है। आप उस कार्य को मन से नहीं चाहते।

यदि समाज में लोग आपसे सलाह लेते हैं, तो अपने विषय में तुच्छता रखने का कोई अधिकार आपको नहीं है। आप आत्मश्रद्धा विकसित करें और खुद अपनी दृष्टि में भी प्रतिभा सम्पन्न बनें। यदि लोग आपसे सलाह नहीं लेते, आपको यों ही समझते हैं, तब जरूर आपके व्यक्तित्व में कमजोरी है। अपनी इस कमजोरी को मालूम कीजिये। क्या आपमें शिक्षा की कमी है? चरित्र की दृढता नहीं है? या अनुभव शून्यता है? प्रतिभा अपने मौलिक विचारों का स्पष्ट प्रदर्शन है।

क्या तुम निशाना चूक गए हो? चूक गए तो किस कारण? संभव है अब तुमने विद्या, बुद्धि, अनुभव, अध्ययन एकत्रित कर लिया हो। अब निशाना चमकता दीख रहा है, पुनः एक प्रयत्न करो। क्या तुम दौड़ते दौड़ते गिर गये हो? थोड़ा श्वास लो और फिर दौड़ो।

किसी कार्य को तय करने में यदि तुम्हें बहुत देर लगती है। करूँ या न करूँ? ऐसा सोचते हो, तो इसका अभिप्राय है कि तुममें संशय तथा अविश्वास है। तुम उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहते।

मानसिक विकास का अटल नियम।

(डा० दुर्गाशंकरजी नागर, उज्जैन)

जिस प्रकार के विचार हम नित्य किया करते हैं उन्हीं विचारों के अणुओं का मस्तिष्क में संग्रह होता रहता है। सारे दिन जो निठल्ले बैठे रह कर गपशप लगाया करते हैं, उनके मस्तिष्क में फालतू विचारों का कचरा ही इकट्ठा हुआ करता है और अन्य सद्गुणों के अणु शुष्क हो जाते हैं। जो व्यक्ति दुष्ट दुर्व्यसनों अथवा दुर्गुणों में फँसे रहते हैं, उनके मस्तिष्क में उसी प्रकार के अणुओं की वृद्धि होती रहती है।

मस्तिष्क का उपयोग उचित और सद् कार्यों में करने से, उसे आलसी निकम्मा न छोड़ने से मानसिक शक्ति का विकास होता है। सामान्य मनुष्य अपने सारे मस्तिष्क का उपयोग नहीं करता, केवल मस्तिष्क के अर्द्धभाग को ही उपयोग में लाता है और मस्तिष्क के आधे भाग के अणु निष्क्रिय पड़े रहते हैं। बिना अध्ययन, सूक्ष्म विचार के मस्तिष्क संकुचित हो जाता है। दूसरों के आदेश व सम्मति पर जो मनुष्य अपना जीवन संचालन करते है उनकी बुद्धि इतनी सुस्त व मन्द हो जाती है कि स्वतः विचार नहीं कर सकते। अपने विचार करने का कार्य दूसरों से करवाते हैं किंचित मात्र भी अपने विचार रूपी यन्त्र का उपयोग नहीं करते। फलतः उनके मस्तिष्क संकीर्ण हो जाते हैं और उनका सारा जीवन दासता के बन्धन में ही व्यतीत होता है।

मस्तिष्क को उत्तम या निकृष्ट बनाना तुम्हारे हाथ में ही है। सोचो, विचारो तथा मनन करो। क्रोध करने से तुम्हारे मस्तिष्क में क्रोध करने वाले अणुओं की संख्या की वृद्धि होती है। चिंता, शोक, भय व खेद करने से इन्हीं कुविचारों के अणुओं का तुम पोषण करते हो और मस्तिष्कको निर्बल बनाते हो। भूतकाल की दुर्घटनाओं, या दुखद प्रसङ्ग को स्मरण कर, खेद या शोक के वशीभूत होकर मस्तिष्क को निर्बल मत बनाओ। शरीर में बल होते हुए भी उसका उपयोग न करने से, बिना उपयोग से बल क्षीण होता है। इसी प्रकार बिना विचार के मस्तिष्क भी क्षीण होता है। नवीन विचारों का मन में स्वागत करने से मस्तिष्क का मानस व्यापार व्यापक होता है तथा मन प्रफुल्लित हो जाता है, जीवन व बल की वृद्धि होती है, मन व बुद्धि तेजस्वी बनते हैं। जो विचार हमारे मस्तिष्क में हैं, वे ही हमारे जीवन को बनाने वाले हैं। जिस कला के विचार तथा अभ्यास करोगे, उसीमें निपुणता मिलेगी। मस्तिष्क के जिस भाग का उपयोग करोगे, उसी की शक्तियों का विकास होगा।

यदि हम इस नियमबद्ध संसार में स्वतन्त्र और स्वाधीन बनना चाहते हों तो हमारे स्वतन्त्र विचार होने चाहिये और हमें दूसरों के स्वतन्त्र विचारों का आदर करना चाहिए।

यदि तुम एक दम किसी की बावत राय पक्की कर लेते हो, तो यह बुद्धि का विक्षेप है। भली भांति सोचकर ही राय पक्की करनी चाहिए।

यदि तुमने पहले ही सोच लिया है कि कल, भविष्य, जन्म में तुम्हें स्पष्टतः क्या करना है, तो तुम दूरदर्शी हो। किन्तु यदि उस योजना पर तुम ठीक से नहीं चल रहे हो, तो तुम संकल्प के ढीले हो। ढीले संकल्प वाले का कुछ नहीं मिलता। एक बार निश्चय करो और समग्र शक्तियों को उधर ही केन्द्रीभूत करदो।

यदि तुम्हारा मन विद्या प्राप्त करने, नई नई बातें सोचने, सुनने समझनेकी इच्छा करता है तो सामान्यतः तुम्हारी बुद्धि की प्रगति ऊंची तरफ है। उसका विकास हो रहा है। यदि तुम यही बात नहीं सीखना चाहते और रूढियों में जकड़े हो, तो बुद्धि को जंग लग गया है।

—क्रमशः

× × ×

यज्ञ द्वारा रोगों की चिकित्सा

[२]

साधारणतः दैनिक कार्यक्रम में हवन को भी एक नित्य कर्म की तरह स्थान देना चाहिए। शास्त्रों ने नित्य पंचयज्ञ करने के लिए हर ग्रहस्थ को आदेश दिया है। पूजा भजन के समय थोड़ा सा हवन नित्य कर लेना चाहिये। शास्त्रीय विधि व्यवस्था के अनुसार हवन विधि न मालूम हो तो गायत्री मंत्र या "ॐ भूर्भुवः स्वः" इन व्याहृतियों से जितनी सामर्थ्य हो उतना घी और सामिग्री लेकर हवन कर लेना चाहिए। समिधा की लकड़ी आम, पीपल, बड़, गूलर, छोंकर, बेल, ढाक, आदि के पुराने पेड़ की खूब सूखी हुई लेनी चाहिए। चंदन, देवदारु, सर.खी सुगंधित लकड़ियां भी थोडी बहुत मिला लीं जांय तो और भी अच्छा है। हवन सामिग्री में निम्न वस्तुऐं होनी चाहिए:—चन्दन, इलाइची, जायफल, जावित्री, केशर, गिलोय, अगर तगर, असगध, बंशलोचन, गूगल, लौंग, ब्राह्मी, पुनर्नवा जीवन्ती, कचूर, छार छबीली, शतावरि, खस, कपूर-कचरी, करूलगट्टा, शीतल चीनी, तालीस पत्र, वच, नागकेशर दालचीनी रास्ना, आंवला, जटामासी, इन्द्र जौ, मुनक्का, छुहारा नारियल की गिरी, चिरोंजी, किशमिश, पिस्ता, अखरोट। यह चीजें साधारणतः समान भाग होनी चाहिए पर केशर बंसलोचन जैसी अधिक मँहगी चीजें आर्थिक कारणों से कम भी डाली जा सकती हैं। सामिग्री नई, ताजी सूखी और साफ होनी चाहिए। सामिग्री कूट कर उसमें तिल, जौ, चावल, उर्द, शक्कर और घी मिला लेना चाहिए। इस सामिग्री का हवन करने से हवन के निकटस्थ लोगों को बल वर्धक, मानसिक शान्तिदायक और रोग नाशक तत्व प्राप्त होते हैं। फल स्वरूप उनके स्वास्थ्य की स्थिति उन्नत एवं सन्तोष जनक होने लगती है।

यदि किसी रोग विशेष की चिकित्सा के लिए हवन करना हो तो उसमें उस रोग को दूर करने वाली ऐसी औषधियां सामिग्री में और मिला लेनी चाहिए जो हवन करने पर खांसी न उत्पन्न करती हों। यह मिश्रण इस प्रकार हो सकता है:—(१) साधारण बुखारों में तुलसी की लकडी तुलसी के बीज, चिरायता, करंजे की गिरी (२) विषम ज्वरों में—पाढ़ की जड़, नागरमौथा लालचन्दन, नीम की गुठली, अपामार्ग (३) जीर्ण ज्वरों में—केशर, काकड़ सिंगी, नेत्रवाला, त्रायमाण, खिरेंटी, कूट, पोहकर मूल (४) चेचक में—वंशलोचन, धमासा, धनियां, श्योनाक, चौलाई की जड़ (५) खांसी में—मुलहटी, अडूसा, काकड़ा सिंगी, इलायची, बहेड़ा, उन्नाव, कूलंजन (६) जुकाम में—अनार के बीज, दूब की जड, गुलाब के फूल, पोस्त, गुल बनफसा (७) श्वांस में—धाय के फूल, पोस्त के डौडे, बबूल का वक्कल, मालकांगनी, बडी इलायची, (८) प्रमेह में—तालमखाना, मूसली, गोखरू बड़ा, शतावरि, सालममिश्री, लजवंती के बीज (९) प्रदर में—अशोक की छाल, कमल केशर मोचरस, सुपाडी, माजूफल, (१०) बात व्याधियों में—सहजन की छाल, रास्ना, पुनर्नवा, धमासा, असगंध, बिदारीकंद, मैथी, (११) रक्त विकार में—मजीठ, हरड़, बावची, सरफोंका, जबासा, उसवा (१२) हैजा में—धनियां, कासनी, सोंफ, कपूर, चित्रक (१३) अनिद्रा में—काकजघा, पीपलामूल, भारगी (१४) उदर रोगों में—चव्य, चित्रक तालीस पत्र, दालचीनी, जीरा, आलू बुखारा, पीपरिं, (१५) दस्तों में—अतीस, बेलगिरी, ईसबगोल, मोचरस, मौलश्री की छाल, तालमखाना, छुहारा। (१६) पेचिस में—मरोड़फली, अनारदाना पोदीना, आम की गुठली, कतीरा (१७) मस्तिष्क संबंधी रोगों में—गोरखमुंडी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, बच शतावरि (१८)। दांत के रोगों में—शीतलचीनी, अकरकरा, बबूल की छाल, इलायची, चमेली की जड (१९) नेत्र रोगों में—कपूर, लौंग, लालचन्दन, रसोत, हल्दी, लोध (२०) घावों में—पद्माख, दूब की जड, बड की जटाऐं, तुलसी की जड़, तिल, नीम की गुठली, आंवाहल्दी। (२१) बन्ध्यात्व में—शिवलिंगी के बीज जटामासी, कूट, शिलाजीत

नागरमौथा, पीपलवृक्ष के पके फल, गूलर के पके फल, बड़ वृक्ष के पके फल, भट कटाई। इसी प्रकार अन्य रोगों के लिए उन रोगों की निवारक औषधियां मिलाकर हवन सामिग्री तैयार कर लेनी चाहिये। इस सम्बन्ध में 'अखंड-ज्योति' कार्यालयसे पाठक गण जवाबी पत्र द्वारा सलाह ले सकते हैं।

स्वस्थ्य मनुष्य को अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखने और उसे बढ़ाने के लिए नित्य गायत्री मंत्र के साथ हवन करना चाहिये। इससे आध्यात्मिक लाभ भी होता है। रोगी मनुष्य यदि चल फिर सकता हो तो उसे आसन पर पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिये और स्वयं हवन करना चाहिए। यदि रोगी अशक्त हो तो उसे हवन के समीप मुलायम बिस्तर पर लिटा देना चाहिये। जिस कमरे में रोगी का रहना होता हो उस कमरे की खिड़कियां खोलकर यदि हवन किया जाय तो बहुत अच्छा है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कमरे में जरूरत से ज्यादा गैस भर जाने के कारण रोगी को कष्ट न हो। हवन की अग्नि प्रज्वलित रहनी चाहिए धुँआ सदा हानिकारक होता है, चाहे वह लकडी का हो चाहे सामिग्री का हो। जलती हुई अग्नि से ही औषधियों की सूक्ष्मता ठीक प्रकार होती है। घर में हवन की वायु के बस जाने से अनेक प्रकार के अस्वास्थ्य कर विकारों का निवारण हो जाता है।

हवन के समय हलके ढीले और कम वस्त्र पहनने चाहिये। यदि ऋतु अनुकूल हो तो नगे ही बैठना चाहिये जिससे कि यज्ञ की वायु शरीरको बाहर भी स्पर्श करे। स्नान करके बैठना सबसे अच्छा है पर यदि स्थिति अनुकूल न हो तो हाथ मुँह धोकर भी काम चल सकता है। यदि विधिवत् हवन न हो सके तो एक मिट्टी के सकोरे में लकड़ियां जलाकर उस पर घी और हवन सामिग्री डालकर रोगी के समीप रख देना चाहिए। एक तरीका यह भी हो सकता है कि सामिग्री को कूटकर घी के साथ उसकी बत्ती सी बनाली जाय और धूपवत्ती की तरह उसे जलने दिया जाय। हवन के लिए प्रातःकाल का समय सबसे अच्छा है। बिना विशेष आवश्यकता के रात्रि में हवन न करना चाहिये।

हवन के समीप जल का भरा हुआ एक पात्र रखना कभी न भूलना चाहिये। यदि बड़ा हवन हो हवन कुण्ड के चारों ओर पानी में भरे पात्र रख देने चाहिये। कारण यह है कि हवन में जहां उपयोगी वायु निकलती है वहां कार्बन सरीखी हानिकार गैस भी निकलती है। पानी उस हानिकर गैस को खींचकर अपने में चूस लेता है। इस पानी को सूर्य के सम्मुख अर्घ के रूप में फैला देने का विधान है। इस जल को पीने आदि के काम में न लाना चाहिये।

हवन के अतिरिक्त वायुचिकित्सा का दूसरा तरीका प्राणायाम है। हम अपनी "आसन और प्राणायाम" पुस्तक में इसका वर्णन कर चुके हैं। प्राणायाम के द्वारा अनेक कठिन रोगों के रोगी स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं। विशेष रोगों के लिए विशेष प्राणायाम भी हो सकते हैं। पर साधारण और सर्व रोगोपयोगी प्राणायाम यह है कि (१) खुली हवा में प्रातःकाल मेरुदण्ड सीधा कर पद्मासन से समतल भूमि पर एक छोटा आसन बिछा कर बैठें (२) फेफड़ों में जितनी हवा भरी हो उस सबको धीरे धीरे बाहर निकाल दें (३) जब फेफड़े बिलकुल खाली हो जावें तो धीरे धीरे सांस खींचना आरम्भ करें और जितनी वायु छाती एवं पेट में भरी जा सके भरलें। (४) जितने सैकिंड में हवा खींची गई हो उसके एक तिहाई समय तक वायु को भीतर ही रोकें (५) अब धीरे धीरे वायु को बाहर निकालना आरम्भ करें और पेट को बिलकुल खाली कर दें (६) जितनी देर में हवा बाहर निकाली गई हो उसके एक तिहाई समय तक बिना वायु के रहें (७) फिर पूर्ववत् वायु खींचना आरम्भ करदें यह एक प्राणायाम हुआ। ऐसे प्राणायाम सामर्थ्य के अनुसार एक समय में १०-१५ या न्यूनाधिक किये जा सकते हैं। घण्टे दो दो घण्टे के अन्तर से यह प्राणायाम करते रहने चाहिये। साथ में 'ॐ' का या गायत्री मन्त्र का

ज्योति वर्धक, नेत्र-व्यायाम
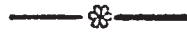
नेत्रों की ज्योति बढाने के लिये एक उपयोगी व्यायाम नीचे दिया जाता है। इस प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय करना चाहिये। इस अभ्यास को करने में दस मिनट के लगभग लगते हैं। इसके कुछ दिन लगातार करने से नेत्रों की ज्योति बढती है और चश्मा लगाने की आदत छूट जाती है। व्यायाम इस प्रकार है :—

(१) कमर को सीधी करके पालथी मारकर शान्तिपूर्वक वैठिये। शिर सीधा रखिये; नेत्र बन्द कर लीजिए।

(२) पुतलियों को नेत्र बन्द किये ही दाहिनी ओर मोड़िये फिर बाईं ओर मोडिए ऐसा पांच बार करिए। इस क्रिया को करते समय शिर न हिलना चाहिए।

(३) पुतलियों को ऊपर ले जाइए फिर नीचे लाइए। शिर को बिना इधर उधर हिलाए, इस क्रिया को भी पांच बार कीजिए।

(४) पुतलियों को ऊपर उठाओ फिर दाहिनी ओर, नीचे बांई ओर, ऊपर, इस क्रम से पाँच चक्कर घुमाइए।

(५) पुतलियों को नीचे लेजाकर बांई ओर, ऊपर, दाईं ओर, नीचे इस क्रम से पांच चक्कर घुमाइए।

(६) नाक के अग्रभाग के पहले दाहिनी आंख से फिर बाँई आंख से देखो। नेत्र दोनों खुले रहें। नाक का अग्रभाग पुतली को थोड़ा सा मोड़ने से दिखाई देता है। इस क्रिया को भी पांच बार करो।

(७) पलकों को सकोड़ कर आंखों को बंद कीजिए फिर एक दम खोल दीजिये इस क्रिया को भी पाँच बार कीजिये।

(८) यह सब क्रियाऐं करने के बाद नेत्रों को बन्द कर उङ्गलियों से धीरे धीरे एक मिनट सहलाना चाहिये।

(९) इसके बाद ताजे स्वच्छ शीतल जल से पलकों पर छींटे मारने चाहिये।

(१०) यह अभ्यास प्रातःकाल सूर्योदय के समय खुली जगह में पूर्व की ओर मुँह करके ऐसी जगह करना चाहिये जहां से सूर्य दीखता हो।

(११) आरम्भ में हर क्रिया पांच पांच बार करने का आदेश किया गया है। इसमें प्रति सप्ताह एक बार की वृद्धि करते जाना चाहिये। और अन्त में हर क्रिया को दस बार करने का प्रयत्न करना चाहिये। दस बार से अधिक करने की जरूरत नहीं है।

आंखों की कमजोरी शिथिलता, धुन्ध, और मन्द ज्योति को हटाने में इससे सहायता मिलती है। जलन दूर होकर शीतलता प्राप्त होती है। व्यायाम से जैसे शरीर के अन्य अङ्ग पुष्ट होते हैं वैसे ही नेत्रों को भी व्यायाम द्वारा पुष्ट एवं निरोग बनाया जा सकता है।

जप भी करते रहना चाहिये। जैसे आंधी आने से आकाश में वायु की शुद्धि हो जाती है उसी प्रकार प्राणायाम से वायु की प्रचण्ड हलचल द्वारा भीतरी विकार उमड़ कर सांस द्वारा बाहर निकल जाते हैं। फेफड़े, मस्तिष्क हृदय, आमाशय, आंत, पेडू और गुर्दे को इस प्राणायाम द्वारा बल मिलता है और आवश्यक व्यायाम हो जाता है। जिससे निर्बल अंगों में सबलता बढ़ती है और बिगडा हुआ स्वास्थ्य सुधरता है।

मनुष्य को बड़ी सजगता के साथ जीवन को व्यवस्थित बनाना सीखना चाहये। अव्यवस्था से समय और शक्ति दोनों का दुर्व्यय होता है। एक बार व्यवस्थित जीवन की आदत बनजाने पर कार्यक्रम में तेजी और खूबसूरती आजाती है। भीतरी और बाहरी व्यवस्था जीवनोन्नति की सबसे पहली एवं सर्वोपरि सीढी है।

× × ×

एक चमत्कारी कथन।

(प्रोफेसर मोहनलाल वर्मा एम. ए. एल. एल. बी.)

एक बार यमुनाजी के उस पार दुर्वासा मुनि आये हुए थे दुर्वासाजी का क्रोध तो प्रसिद्ध ही है। मुनिवर के आदर सत्कार के लिये वृहत योजनाएँ होने लगीं। श्रीकृष्ण भगवान ने गोपियों को आज्ञा दी कि जाओ; उन्हें यमुनाजी के उस पार भोजन दे आओ। योगेश्वर कृष्ण हजारों गोपियों में रहते थे। श्रीकृष्णजी ने आज्ञा दी कि जाओ, मुनिवर दुर्वासा को किसी प्रकार की तकलीफ न हो, रुष्ट होने का अवसर न मिले गोपियां चकराईं और बोलीं—हे, नटराज! यमुना पार कैसे जाँय। इसकी विधि तो बताइये।"

श्रीकृष्णजी ने कहा—"यमुनाजी से कहना, यदि श्रीकृष्ण हममें से किसी के साथ रमण करते हों, तो हमें जाने का मार्ग मत देना, यदि हम पूर्ण ब्रह्मचारिणी हों, पवित्र और सात्विक हों तो हे यमुना मय्या! हमें रास्ता दे देना।" गोपियों ने वैसा ही किया और यमुना का जल इतना कम हो गया कि वे सुविधा से पार चलीं गईं।

मुनि दुर्वासा को षट्रस व्यंजन खिलाकर जब गोपियां लौटने लगीं, तो पुनः उन्होंने यमुना पार का प्रश्न उठाया। इस पर मुनि ने कहा—"यमुना जी से कहना, यदि दुर्वासा ने दूब रसके सिवा और कुछ खाया हो, तो रास्ता मत देना, नहीं तो दे देना।" गोपियों ने वैसा ही किया, तब कहीं वे पार जा सकीं।

इन बातोंसे गोपियां चकित हो गईं क्योंकि प्रत्यक्ष विरोधाभास था। दुर्वासाजी को विविध प्रकार का राजसी भोजन कराया था और वे कहते थे कि सिवा दूब रस के उन्होंने कुछ नहीं खाया। श्रीकृष्ण प्रतिदिन गोपियों के साथ विहार करते थे, किन्तु उनका कहना कि उन्होंने कभी किसी के साथ रमण नहीं किया—यह एक चमत्कारी कथन था। यह गूढ रहस्य भला उन बेचारी गोपियों के समझ में क्योंकर आता। वे तो केवल प्रेम जानती थीं—प्रेम मार्ग ही उनके लिए सुलभ था। गोपियों के लिए योग साधन, अथवा ज्ञानप्राप्ति करना असंभव नहीं तो महा कठिन अवश्य था

दुर्वासाजी की भोजन की तथा श्रीकृष्ण की कामवासना नियन्त्रण की बात जो ऊपर लिखी गई है, उससे जिस चित्तवृत्ति का पता लगता है, वह आदर्श रूप और अनुकरणीय है। हम संसार में रहें किन्तु अपने को, अपनी आत्मा का, अपने स्वत्व को संसारिक वस्तुओं में न डुबोयें वरन् सदा उनसे ऊपर रहें, उनके प्रति वीतराग रहें। सांसारिक कार्यों में संसार में रहते हुए भी अधिक लिप्त होना ठीक नहीं। हमें सदैव उनके प्रति वैराग्य भाव रखना चाहिये। कामवासनाओं को नियंत्रित रखनेके लिए अत्यन्त मानसिक दृढताकी आवश्यकता है जो एक पूर्ण योगी में परपक्वता को पहुँचती है। नियमित कर्म कीजिये, किन्तु फल प्राप्ति की वासना ही में न डूबे रहिये! कमल जैसे जल में रहकर भी उससे दूर ही रहता है, इसी प्रकार आप संसार में रहते हुए भी सांसारिक वस्तुओं में लिप्त न रहिए। समत्व भाव रखिये। एक पहुँचे हुए योगी को चाहे आप सत्तू और नमक रख दीजिए, या छप्पन प्रकार के भोजन परोस दीजिये। "समत्व" भाव के कारण वह एक ही स्वाद से भोजन करेगा। महात्मा सांसारिक वस्तुओं में रहते हुए भी उन्हें तृणवत् त्याज्य समझते हैं, तथापि सम्पूर्ण संसार उनको गोद में उठाने के लिये दौड़ता है। यह प्रत्यक्ष बात है कि आप जिस वस्तु के पाने की इच्छा अधिक करेंगे, उतनी ही मानों वह वस्तु आपसे दूर हटती जायगी। महात्मा, योगी, मुनि किसी के प्रति आकर्षित नहीं होते, विरागी रहते हैं तभी दूसरे मनुष्यों को उनके प्रति आकर्षण प्रतीत होता है। अतः संसार में रहकर भी उसकी रंगीन चीजों में अपनत्व न खोइये। वृत्तियों को उच्च बनाइये। रागी से वि-रागी बनिये। रागी या विरागी होना वाह्य उपकरणों पर निर्भर नहीं प्रत्युत आन्तरिक भावना पर अवलम्बित है।

यदि गेहूँ न मिले तो ?

(डा० विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर)

——❀——

उस दिन जब राशन में चार चटांक के बजाय दो छटाँक गेहूँ मिलने का आर्डर हुआ तो एक भाई आरोग्य मन्दिर में पधारे और कहने लगे कि आप तो बराबर ही शाक तरकारी अधिक खाने एवं अन्न कम खाने की सिफारिश करते हैं पर यह तो बताइये कि "यदि राशन और भी कम हो जाय एवं गेहूँ दो छटांक भी न मिले तो ?"

ठीक यही प्रश्न आजसे दो महीने पहले मुझसे स्थानीय मारवाड़ी छात्र संघ के मन्त्री ने किया था और बदले में अपने और अपने सदस्यों के लिये इस समस्याको सुलझाते भोजन की एक दावत मुझ से मांग ली थी। मैंने उन्हें बुलाया और उस समय आने वाली तरकारियों में से चुकन्दर, पात गोभी, टमाटर, गाजर एक, दो, तीन, चारके अनुपात में कच्ची ही पाव पाव भर की मात्रा में प्रत्येक के लिए एक कटोरे में सजा दी थी। ऊपर से दो दो तोले किशमिश और नमक, जीरा और पांच सात बूँद नीबू का रस भी डाला गया था, गन्ने के रस, मखनिया दूध और लौकी की खीर बनाई गई थी। कुछ गुड़ भी था और "गेहूँ न मिले तो?" का जवाब बालू में भुना आलू भी परसा गया था। लोगों ने खाया और छात्र संघ के चालीस सदस्यों में से पांच सात ही ऐसे निकले होंगे जिन्हें इस भोजन में मजा न आया हो। यहां पर यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि इस भोजन में प्रत्येक के पीछे पांच आने ही खर्च हुये थे।

ईंधन की पूर्ति,

जब लोग यह सोचने लगते हैं कि अगर गेहूं न मिले तो ? तो यह भूल जाते हैं कि शरीर के लिए गेहूँ, चावल, जौ, मकई, बाजरे, बजड़ी, टांगुन सांवा, केला और आलू का मूल्य एक ही है। ये सभी शरीर रूपी इंजन के लिए ईंधन का काम करते हैं। ईंधन किसी भी लकड़ी का क्यों न हो जल कर तो वह गरमी ही पहुंचाता है। अतः प्रश्न होना चाहिए कि ईंधन की पूर्ति कैसे हो ? न कि अमुक से ही ईंधन की पूर्ति हो। यहां क्यों और कैसे—में न जाकर यह सीधे में बता देना उचित समझता हूं कि उत्तमता के हिसाब से सर्वोत्तम श्वेतसार केले में फिर आलू में और तब चावल, गेहूँ, जौ, मकई, बाजरे आदि में पाया जाता है। केले को लोग भोजन समझते ही नहीं, आलू को भी भाजी से अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यही नहीं आलू के विषय में लोगों में अनेक गलत धारणायें भी बैठी हुई हैं। उन सबमें बड़ी तो यह है कि आलू गरम होता है। श्वेतसार का काम ही शरीर में गरमी पहुंचाना है और लोग जब इसे रोटी या चावल के साथ शाक समझ कर खा जाते हैं तो शरीर में आवश्यकता से अधिक श्वेतसार पहुंचने से अधिक गरमी उत्पन्न हो जाती है और दोष अपनी समझको नहीं गरीब आलू को दिया जाता है। तो आलूको शाक की तरह नहीं अन्नकी तरह बरतिये, इसे पूरा भोजन समझिये।

आलू की उपयोगिता,

भोजन विज्ञान के कई जानकार भी आलू में उत्तम प्रकार का श्वेतसार होने पर भी आलू, केले, चावल के मुकाबिले में गेहूं की ही अधिक सिफारिश करते हैं। इसका भी कारण है। भोजन के साथ फुजले का होना आवश्यक है और वह गेहूँ में चोकर के रूप में केले में रेशों, आलू के छिलके या चावल की ऊपरी पर्त की अपेक्षा बहुत अधिक होता है अतः गेहूं खाने वालों के लिए कब्ज का डर नहीं रहता पर यदि आलू के साथ हरी तरकारियां अधिक खायी जायँ तो वह डर जाता रहेगा, क्योंकि हरी तरकारियों में फुजले की प्रधानता होती है।

आलू खाना भी सीखिये। यदि डेढ सेर पानी में सेर भर आलू उबालकर आप उसका पानी फेंक देंगे तो आप उन पुराने जमाने के चाय इस्तेमाल करने वालों की तरह हास्यास्पद होंगे जो चायकी

पत्तियां पानी में उबालकर पानी फेंक देते थे और और बची पत्तियों की मक्खन और रोटी पर छिड़क कर खाते थे। आलू में जो प्राकृतिक लवण होते हैं वे अधिकतर इस पानी में चले जायेंगे और आप श्वेतसार ही खायेंगे। अतः पूर्ण लाभ के लिए आलू को भाप से पकाइये या आग में भुनवाइये। उबला ही पसंद हो तो तरकारियों या दाल में डाल दीजिये। इस तरह उबालने में जो सामान निकलेगा वह आपको दूसरे रूपमें मिल जायगा। जिस तरह भी पकाइये पर जहां तक बन सके उसका छिलका न फेंकिये कच्चे को छीलकर तो कभी बनाइये ही नहीं। ऐसा करके आप आलू का बहुत कुछ नष्ट कर देते हैं। एक आलूको बीच से तराशिये, आपको उसमें दो भाग स्पष्ट दिखाई देंगे एक बीच का जरा पनीला बड़ा भाग और फिर उसके चारों ओर पतली पर कड़ी सी हद। इसी बाहरी हद में आलू के प्राकृतिक लवण होते हैं और छीलने में तो उनका ज्यादा हिस्सा निकलने से न रुकेगा।

आलू तथा आटे में श्वेतसार की मात्रा इस प्रकार होती है :—

	श्वेतसार	पानी
उबला और छिला आलू	१९.७	८०
छिलके समेत भुना आलू	२५.	७१
छने आटे की रोटी	५४.	३२
चोकर समेत आटे की रोटी	४४.	३७

आलू में गेहूं से ज्यादा लोहा, चूना, फासफोरस और पोटाश तो होता ही है इसमें और भी कई मूल्यवान प्राकृतिक लवण पाये जाते हैं जो गेहूँ में नहीं मिलते। इन प्राकृतिक लवणोंकी रोगों से बचाये रखने की शक्ति आज किसी से छिपी नहीं है।

पर एक मनुष्य को जितनी रोटी की जरूरत होगी उससे दूने से भी थोड़े अधिक वजन के आलूकी जरूरत होगी। इसका कारण यह है कि आलू में रोटी की बनिस्बत दूने से ज्यादा पानी होता है अतः इसी अनुपात में श्वेतसार कम होता है।

घबराइये नहीं,

गेहूं की कमी के कारण न घबराइये। इसमें बहुत से लोगों का भोजन राई है, अमेरिका में मकई, जर्मनी में आलू, टिसटम डी कुनहा द्वीप के लोग तो आलू के सिवाय दूसरी चीज जानते ही नहीं। विदेश को जाने दीजिये भारत में ही बंगाल बिहार के अधिकतर लोग चावल खाते हैं राजपूताने में बाजरा चलता है, सावां कोदों रागी खाने वालों की भी संख्या कम नहीं है, फिर यदि आलू खाने वालों की संख्या बढ़े तो हर्ज क्या है। आलू आप अपने बाग में बो सकते हैं और भोजन उपजाने के साथ साथ श्रम का भी लाभ पा सकते हैं।

—※—

भोपाओं का भ्रम जाल।

(श्री राजमल ललवानी EX. M.L.A.'Central')

—※—

यह जानते हुए भी कि मुझे देवी देवताओं तथा फकीर बलों व भोपादि मन्त्र जन्त्र जानने वालों पर बिलकुल श्रद्धा नहीं है फिर भी मेरे एक हितैषी सज्जन बड़े दृढ़ विश्वास के साथ एक भोपाको साथ लेकर एक सप्ताह हुए आये। भोपा को सम्बोधन करके वे महाशय बोले "यह एक सिद्ध हस्त महापुरुष हैं तथा इनको मालूम हुआ है कि आपके मकान की नीव में एक देवी की मूर्ति गढी हुई है जो पुत्रोत्पत्ति में बाधा डालती है। आप आज्ञा दें तो यह महाराज आपके सामने जमीन में से वह मूर्ति निकाल देंगे। इसके अलावा इनके पास कई विस्मयकारी चमत्कार हैं और वे सब इनको भी श्री बजरंगबली की कृपा से उपलब्ध हुए हैं।" उनके प्रशंसा के उद्गारों का सारांश यह था कि उनके नजरों में वह भोपा परमात्मा के एक छोटे भाई से कम न जँचता था मुझे उनकी इस भोली समझ पर बड़ी हँसी आ रही थी कि

ऐसे वैज्ञानिक युग में भी हमारी समाज में कितनी अंध श्रद्धा है। इतनाहीं नहीं हमारे पूज्य मुनि महाराज संत महात्मा जब कि हमेशा सम्यक्त्व का उपदेश देते हैं। फिर भी यह विपरीत श्रद्धा हमारी समाज में इतनी गहरी क्यों विद्यमान है? बड़ा विचार पैदा हुआ।

आखिर मैंने लोगों की इस भोली मान्यता को मिटाने के उद्देश्य से मेरे गांव के कुछ सज्जनों को जिनको देवी देवताओं पर व भोपादि पर विश्वास था बुलाया व सबके सामने भोपाजी को अपना चमत्कार बताने के लिये कहा। भोपाजी ने धूप किया व अपने पास के कगन पर हाथ रखा हाथ रखते ही बडी आवाज के साथ आंखों को अनिमेष करके अङ्गको जोर शोर से घुमाना शुरू किया। लोगों ने समझा बजरंग बली आगये २-३ दफे विश्रान्ति लेलेकर विकराल रूप करके एक दम उठे और एक कौने में लात मार कर एक मूर्ति गिराकर बोले-देखिये यह मूर्ति आगई। मैंने कहा "महाराज जमीन से अगर मूर्ति आई होतो तो जमीन में कही खड्डा नजर आता और न इस मूर्ति पर कोई मिट्टी की रंगत ही नजर आती है फिर हम कैसे मान लें कि यह मूर्ति आपने जमीन में से निकाली है। उत्तर में बड़े जोर से धुर्राने लगे। इस घुर्राने में भी उनकी चालाकी थी सामने वाला व्यक्ति इस आवाज से घबरा जाय व उसके दिल में देवी दोष करने का भय होने लगे ताकि वह आगे पूछ न सके। परन्तु उनकी यह युक्ति मेरे पर कोई असर कर न सकी। आखिर बोले माँग क्या मांगता है? मेरे हितैषी सज्जन ने मुझे मांगने के लिए कहा मैंने महाराज से कहा महाराज मैं मुफ्त की कोई वस्तु नहिं मांगता। मैं प्रत्यक्ष वस्तु चाहता हूँ जिसमें भ मेरा किसी प्रकार का स्वार्थ व लोभ न होगा। हम लोगों ने आज तक पारस का नाम सुना है परन्तु अभी तक देखा नहीं अतः आप अपने देवता से कहिये कि वे पारस लाकर उससे लोहे को सोना करके हमें सिर्फ बता दें। हमको पारस की, सोने की, जरूरत नहीं है केवल हम देखना चाहते हैं। अगर हमें पारस बता दिया तो हम समझेंगे कि आपके अंग में जरूर देव आते है।" भोपाजी ने कहा कि हम कल आपको पारस लाकर बतायेंगे दूसरे दिन फिर एक दफे ही नहीं दो दफे प्रयोग किया। जोर जोर से घूमकर देवको बुलाये। खूब हाथ पैर पटके परन्तु कोई निष्कर्ष नहीं निकला आखिर हताश होकर बोले कि आप कोई दूसरी वस्तु मांगिये। मैंने दस लाख सोनैये बरसाने का व दस लाख जवाहारात बरसाकर केवल बताने का कहा परन्तु सब ओर से निराशा हाथ लगी आखिर उन्होंने देख लिया कि इन तिलों में कोई तेल नहीं है तीसरे दिन मुझसे बिना मिलेही चलते बने। मेरे हितैषी सज्जन के चेहरे पर तो हवाईयां उड़ रहीं थीं।

मेरा इस घटने का उल्लेख करने का उद्देश यह है कि पाठकगण ऐसे भोपे डोपे जन्त्र मन्त्र वालों पर विश्वास कर बरबाद न होवें। मैंने मालूमात की दृष्टि से ऐसे लोगों से कई प्रयोग कराये हैं परन्तु मुझे किसी में भी तथ्य जान नहीं पड़ा भोले लोगों को सिर्फ यह ठगने का जाल है इसके सिवाय कुछ नहीं। इनसे डरने की व देवी दोष का भय करने की कतई जरूरत नहीं है।

—❀—

त्याग का अर्थ है—दूसरों की सेवा करना। उनसे प्रेम और सहानुभूति रखना और उन्हें अपनी शक्तियों द्वारा लाभ पहुंचाना। जो त्याग के द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द का रसास्वादन एक बार कर लेता है वह जानता है कि लेने की अपेक्षा देना अधिक आनन्द मय है।

× × ×

मनुष्य का सबसे बड़ा मुक्ति दाता स्वयं उसी के भीतर विद्यमान है-वह है—'सत्य'। सत्य ही ईश्वर है। जिसके विचार और कार्य भले हैं, वास्तव में वही सच्चा मनुष्य ईश्वर भक्त एवं जीवन मुक्त है।

× ×

दिव्य-ज्योति ।

(श्री० रामलालजी पहाड़ा, खंडवा)

— — ※ — —

अग्नि का आन्तरिक अव्यक्त रूप ज्योति है और बहिरगत व्यक्त रूप ज्वाला-उजाला है। ज्वाला-किरणों फैलकर पदार्थों पर आघात करती है। इस तरह किरणों का घात प्रतिघात चलता है। इस क्रिया को 'प्रकाश' कहते हैं। इसी से मनुष्यों को पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं। सामान्य स्थिति में मनुष्य किरणों के व्यापार को ही ज्योति समझते हैं। व्यवहार में बिजली के प्रकाश को सब जानते हैं पर बिजली के वास्तविक रूप का ज्ञान किसी बिरले को ही होता है। तार में क्रिया को देखकर विद्युत प्रवाह का अनुमान कर लेते हैं, पर मूल कारण के रूप का ज्ञान बुद्धि ग्राह्य ही रहता है इन चर्म चक्षुओं से विद्युत का स्वरूप देखना असम्भव है, यद्यपि विद्युत रस "बाहर भीतर सर्वत्र प्रवाहित रहता है। जैसा श्रुति में कहा है, 'तदेजति तन्नेजति तद्दूरेतद्वन्तिके, तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः!' वह जाता है अर्थात् किरणों द्वारा फैलता है, वह नहीं जाता है अर्थात् मूल रूप में स्थित रहता है, वह पास है अर्थात् सब प्राणियों में समाया हुआ है, वह दूर है, अर्थात् किरणों द्वारा दूर दूर के पदार्थों को प्रकाशित करता है, इस तरह वह इस जगत के भीतर बाहर सर्वत्र है।

"यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु" जैसे जागते हुए दूर जाता है वैसे ही सुप्त अवस्था में भी दूर जाता है। वह सब ज्योतियों का एक दूरगतिवान ज्योति है, यही शिव सकल्पवान मेरा मन होवे। सूर्य के उदय होते ही प्रकाश इतनी दूर पृथ्वी पर और अन्य ग्रहों पर भी १८६००० मील प्रति सेकेंड के वेग से पहुँचता है, अस्त होने पर भी उतनी ही दूर चला जाता है। मनुष्य भी जब जागता तब नेत्रस्थित ज्योति की किरणें दूर दूर के पदार्थों पर पहुँचती है और सोता है तब अन्तरिक्षमें न जाने कितनी दूर चली जाती है। इन्द्रियाँ मानों मध्य में स्थित रहती है वहां से यह ज्योति दोनों अवस्थाओं में दूर जाती है। यही सब इन्द्रियों को पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है। इसके बिना इन्द्रियोंके और जगत के सब व्यापार बन्द रहते हैं।

"यत्त प्रज्ञानमुतचेतोधृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सकल्पमस्तु" अर्थात् यही ज्योति प्रज्ञा और धृतिको उद्भासित करती है; सब प्रकृति से उत्पन्न हुए पदार्थों के भीतर स्थित है, अमर है, इसके बिना जगत में कुछ भी काम नहीं होता है। यही ज्योति सब कामों का मूल कारण है। मनुष्य इसी का ध्यान रख असत् भावों को त्याग करे। जिस तरह बादलों के आने से या आंधी के कारण धूल उड़ने से वातावरण कुछ सघन हो जाता है। सघन वातावरण में ढके रहने के कारण मनुष्यों को सूर्यदर्शन दुर्लभ होता है। उसी तरह माया सक्त जीवों को इस ज्योति का प्रकाश मिलना कठिन है, यहां "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योग माया समावृताः" यद्यपि यह प्राणियों के हृदय में सदा स्थित है। इस सूक्ष्म ज्योति का ध्यान कठिन भी है। इन्द्रियों को बहिर्मुख होना अधिक प्रिय है। इस सिद्धान्त को जानकर कृष्ण भगवान अर्जुन को वस्तुगत तत्व का ध्यान दिखाने के लिए भौतिक पदार्थों का दृष्टान्त लेकर कहते हैं "ज्योतिषां रवि रशुमान्" अर्थात ज्योतियों में मेरी विभूति किरणों वाला रवि—[र अग्नि मूल को, 'वि' वितरण करने वाला] हूँ" यही ज्योतियों के ज्योति अन्धकार से परे श्रेष्ठ कही जाती है। यह आदित्य, चन्द्र, अग्नि, सबमें समाया हुआ है, इन सबका मूल कारण एक ही है यथा "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौतत्तेजोविद्धि मामकम्" सर्व मनुष्यों के हृदय में रहने वाला महा पुरुष ज्योतिर्मय है किन्तु विषय और अपस्वार्थ से वह मलिन हो रहा है। श्रुति कहती है "अंगुष्ठमात्र

हमारा यह शरीर ही कुरुक्षेत्र है।

(पं० दीनानाथजी भार्गव "दिनेश")

— — ❀ — —

गीता सार्वभौम और सर्वप्रिय ग्रन्थ है। विद्वानों ने इसकी भांति भांति से व्याख्या की है। उनका कथन है कि भगवान् का यह अमरगान आज भी प्रत्येक हिन्दू के शरीर रूपी कुरुक्षेत्र में गूंज रहा है। यह मानव शरीर ही कुरुक्षेत्र है। भगवान् ने कहा है :-

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते-

हे! कौन्तेय! इस शरीर को ही क्षेत्र कहते हैं। यह कर्म करने का क्षेत्र है इसलिए इसको कर्मक्षेत्र या कुरुक्षेत्र कहा गया है। अब प्रश्न यह है कि यदि शरीर को ही कुरुक्षेत्र मान लिया जाय तो भी यह धर्मक्षेत्र नहीं हो सकता। पाप का पुतला, पापों से भरा हुआ विकारवान् और नश्वर यह शरीर धर्मक्षेत्र कैसे कहा जा सकता है?

श्रुतियों में बतलाया गया है ८३ लाख ९९ हजार दो सौ निन्यनिवे योनियां रचकर भगवान् इतने प्रसन्न नहीं हुए जितने इस मनुष्य देह को रचकर। कारण? इसमें रहकर उनका मित्र जीव, अथवा उनका अंश रूपी आत्मा बहुत प्रसन्न हुआ उसे सुख मिला, उसे बुद्धि से साधनों द्वारा उन्नति करने के लिए क्षेत्र मिला। आत्मा एवं परमात्मा को सुखप्रद होने के कारण—धार्मिक साधनों का आधार होने के कारण—बुद्धि द्वारा अच्छे कर्म करके सद्गति पाने योग्य होने के कारण, यह कुरुक्षेत्र (शरीर) धर्मक्षेत्र कहलाया।

सद्वृत्तियां कहती हैं कि हमें केवल रहने मात्र का स्थान दे दो परन्तु दुर्वृत्तियां बिना लड़े एक सुई की नोंक के बराबर भूमि भी देने को तय्यार नहा। सद्वृत्तियां पाण्डव हैं और दुर्वृत्तियां कौरव। इस शरीर पर सद्वृत्तियों का ही अधिकार है, परन्तु धृतराष्ट्र—राष्ट्र को धृत अर्थात धारण कर बैठा है। वास्तव में यह उसकी चीज नहीं, वह अन्धा भी है, उसे कुछ सूझता नहीं। यह धृतराष्ट्र हमारे शरीर में मन है, जो जबरदस्ती स्वामी बना हुआ है, परन्तु अन्धा होने के कारण इन्द्रियों और बुद्धि के सहारे है। संजय-सम्यक् प्रकार से राग द्वेष को जय करने वाला विज्ञान है। विज्ञान से ही इस शरीर के सारे हाल जान सकता है। अर्जुन जीवात्मा है और कृष्ण आत्मा रूप परमात्मा है। यदि जीवात्मा अपने रथ की बागडोर को आत्मारूप परमात्मा के हाथों में सौंपकर (युद्ध कर्तव्य पालन) करे तो जय निश्चित है।

पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। लिंग देह अंगुष्ठ मात्र है और धूम रहित ज्योति समान है। और भी "तच्छुभ्रम् ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्म विदोविदुः" वह ज्योतियों की ज्योति शुभ्र है जिसको आत्मवेत्ता ही जानते हैं। जिन मनुष्यों ने सयम नियम द्वारा इन्द्रियों का निग्रह कर अपने दोषों को दूर कर दिया है वे ही इस ईश्वरीय दिव्य ज्योति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु।

— — ❀ — —

सात्विक सहायतायें।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताऐं सधन्यवाद प्राप्त हुईं।

— — ❀ — —

११) श्री कन्हैयालाल भैया, वर्धा।
११) श्री सरस्वती बाई राठी, वर्धा।
५) श्री जानकीलाल नांबधर, हैदराबाद।
५) श्री हस्तीमल हरकचन्द, निजामाबाद।
२) श्री श्रीराम शर्मा, फीरोजाबाद।
२) श्री नारायणप्रसादजी तिवारी, बूंदी।
२) श्री महावीरसिंह जी त्यागी, बीसलपुर।
१।) श्री शिवनरायन राव, कसरपुर।
१) श्री बलवीरसिंह भदौरिया, सीगनपुर।
१) श्री यशपालजी इलाहाबाद।

अखण्ड-ज्योति के जीवनका दूसरा अध्याय आरम्भ होता है

इस पुण्य पर्व के अवसर पर आप भी तुलसीदल चढ़ाइये।

सद्ज्ञान की वृद्धि के लिए, मानवता के कर्तव्यों सद्गुणों, सद्विचारों, सद्भावों को बढ़ाने के लिए अखण्ड-ज्योति मिशन गत सात वर्षों से जो महत्व पूर्ण कार्य कर रहा है उससे प्रायः सभी पाठक भली भांति परिचित हैं। भारतवर्ष से एक छोर से दूसरे छोर तक धर्म प्रचार का कार्य जितनी तत्परता से जिस सफलता के साथ किया गया है उसे देखकर अनेकों विद्वानों, नेताओं एवं महात्माओं ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। विचार क्षेत्र में घुसे हुए शैतान से, पाप से, अज्ञान से, अखण्ड-ज्योति का मिशन, कड़ा मोर्चा ले रहा है। असंख्यों व्यक्तियों की जीवन दिशा को उलट पुलट कर देने में इस छोटे से मठ को अभूतपूर्व सफलता मिली है।

अब तक प्राप्त हुई इन समस्त सफलताओं का श्रेय हमारे पाठकों को है। क्योंकि उन्होंने सच्चे हृदय से अपना सद्भाव हमारे साथ रखा है। पाठकों ने अखण्ड-ज्योति के साथ वैसे ही आत्मीयता भरे सद्भाव रखे हैं जैसे गुरुजनों के साथ, सगे कुटुम्बी के साथ, हितू रिश्तेदारों के साथ एवं आन्तरिक आत्मीय सखाओं स्वजनों के साथ रखे जाते हैं। अपनी शारीरिक, मानसिक, घरेलू, व्यापारिक, धार्मिक गुत्थिओं को, समस्याओं को पाठक हमारे सामने हृदय खोलकर उसी प्रकार रख देते हैं जैसे अपने सबसे अधिक विश्वासी मित्र के साथ रखा जासकता है। इन गुत्थियों का जो सुलझाव यहां से भेजा गया है उसे उन्होंने श्रद्धापूर्वक अपनाया और कार्य रूप में परिणत किया, फल स्वरूप ऐसे ऐसे मधुर परिणाम सामने आये, जिनका स्मरण करने मात्र से आनन्द के रोमांच होआते हैं।

परमात्मा की धर्म संस्थापन की पुनीत इच्छा में, उन्हीं की प्रेरणा से सहस्रों पाठकों ने पूरी दिलचस्पी से सहयोग दिया, उस सहयोग के कारण ही अखण्ड-ज्योति द्वारा सत् प्रचार का इतना कार्य हो सका। इसका श्रेय उन सहस्रों स्वजनों को है जिन्हें मोटी भाषा में हम 'पाठक' भी कह देते हैं।

लड़ाई के दौरान में एक समय ऐसा आया था जब कागज की दुर्लभता एवं सरकारी कन्ट्रोल कठोरता इतनी बढ़ गई थी कि अनेकों पत्र लड़खड़ा कर मर गये। अखण्ड-ज्योति के सामने भी उसकी मृत्यु मुँह फाड़कर नाच रही थी। क्योंकि उसके संचालक एक प्रकार से निर्धन ही हैं। इस विषम घड़ी में पाठकों ने अपने प्रेम से सने पैसे सहायता के लिए भेजे। उन पैसों से हाथ का बना कागज बनाकर पत्रिका और पुस्तकें जीवित रखी गई। हिसारके श्रीमुंशीरामजी गुप्ता जो मथुरा आकर कुछ दिनों अखण्ड-ज्योति में ठहरे थे। उन्होंने एक अद्भुत आदर्श रखा। दाल की छोटी सी दुकान से उन्हें जो कुछ आमदनी होती थी उसमें से भोजन वस्त्र लेकर प्रायः सबकासब अखण्ड-ज्योति को भेज देते थे। अन्य पाठकों ने अपने ढङ्ग से सहायताएँ कीं। कानपुर के राजनारायणजी श्रीवास्तव, अहमदाबाद के बाबु भाईजी, वेतिया के गोपालप्रसादजी आदि सज्जनों ने बिलकुल निस्वार्थ भाव से, अपना बहुमूल्य समय देकर सैकड़ों ग्राहक बनाये। अनेकों स्वजनों ने जैसे भी बन पड़ा तन से, मन से, धन से इस मिशन को सींचा। पाठकों के स्वजनों के प्रेम जल से सींचा हुआ, यह धर्म तरु आज छोटा है तो भी हरा भरा और सुरक्षित है। उस पर हर एक पाठक को गर्व करने का अधिकार है।

सात वर्ष बाद अब अखण्ड-ज्योति के जीवन का दूसरा अध्याय आरम्भ होता है। पहले परिच्छेद में वह मृत्यु के मुख से बच गई और भद्दे, रद्दी, खराब कागजों पर बुरी भली छपाईसे छपा साहित्य

देकर जनता को आध्यात्मिक खुराक पहुंचाती रही। यह दो ही निष्कर्ष अब तक के कार्य का सिंहावलोकन करके कहे जा सकते हैं। पर अब परिस्थितियां बदल रहीं है। दूसरे महायुद्ध का दौरा ठंडा पड़ गया है, तीसरा महायुद्ध भी बहुत समीप नहीं है। जो कठिनाइयाँ आज हैं निकट भविष्य में उनके घटने और हटने की आशा है इन नयी परिस्थितियों में अखण्ड-ज्योति का सद्ज्ञान प्रसारका, धर्म स्थापना का कार्य अधिक तत्परता से करना है। जनता को सात्विक आध्यात्मिक भोजन पहुँचा कर उसके मस्तिष्क में सतोगुणी भावनाओं को ओत-प्रोत करना है, इस कार्य के लिए बहुत बड़े परिमाण में, देश की विभिन्न भाषाओं में, सुलभ, सस्ता, सुन्दर, साहित्य तैयार करके उसे जन साधारण तक पहुंचाने का महत्व पूर्ण कार्य करना है। अखण्ड ज्योति में पुस्तकों में, अधिक उन्नति करनी है। मिशन की अन्य प्रगतियों को विविध प्रकारों से आगे बढाना है। संसार की सुख शान्ति के लिए, प्रभु की इच्छा पूर्ण करने में निमित्त बनने के लिए, धर्म स्थापना के लिए, नये धर्म युग का सूत्र पात करने के लिए, इस कार्य प्रणाली को आगे बढाना सचमुच आज की घड़ी में बहुत ही आवश्यक है।

इस साहस पूर्ण कदम को हम अकेले नहीं बढा सकते। अखण्ड-ज्योति अपने जीवन के दूसरे अध्याय में प्रवेश करते हुए स्वजनों का सहारा चाहती है: इस दिशा सब से प्रथम कार्य जो करना है वह है—अपना प्रेस लगाना। अपने पास प्रेस न होने के कारण बाहर के प्रेसों से पत्र तथा पुस्तकों की छपाई करानी पड़ती है। इसमें अनेक असुविधा हैं। छपाई का खर्च बहुत पड़ता है, अशुद्ध और खराब छपाई होती है. समय पर काम नहीं मिलता, अधिक काम छापने की उन्हें फुरसत नहीं होती, इन चारों कठिनाइयों के कारण नित्य ही अड़चनें आतीं हैं। अपना प्रेस हो जाने पर यह सब कठिनाइयां दूर हो जावेंगी और मन चाहा साहित्य, समय पर, सुविधा पूर्वक, कम खर्च में तैयार हो सकेगा। इन सब बातों पर विचार करते हुए अखण्ड ज्योति अपना प्रेस लगाना चाहती है। यह कार्य पूरा होते ही अधिक उत्तम, अच्छा, सुन्दर, उपयोगी एवं आवश्यक साहित्य प्रकाशित होना आरम्भ होजायगा। इस प्रकाशन से होने वाला लाभ अन्य उपयोगों, धर्म वृद्धि करने वाले कार्यों को प्रगति एवं प्रेरणा देगा। जिस प्रकार घडी में चाबी लगा देने से स्प्रिंग में ताकत भर जाती है और स्प्रिंग की ताकत से घडी के अनेकों छोटे बड़े पुर्जे घूमने लगते हैं उसी प्रकार प्रेस की व्यवस्था ठीक प्रकार होजाने से अखण्ड-ज्योति में शक्ति भर जायगी। इस बल के कारण अनेकों धर्म प्रवृत्तियोंके आसानी से चलते रहने में बड़ी सुविधा होजायगी।

अपने जीवन के दूसरे अध्याय में प्रवेश करते हुए अखण्ड-ज्योति अपने स्वजनों आत्मीयों, कुटुम्बियों की सहायता चाहती है। जिस धर्म तरु के सुस्थित होजाने से अनेक भ्रान्त व्यक्तियों को सद्ज्ञान का अमृतलाभ होगा, जिसकी छाया में बैठ कर असंख्य नर-नारी रोग, शोक, क्लेश, पीड़ा और पाप तापों से छुटकारा प्राप्त करेंगे ऐसे पौदा की जड़ में आज थोड़ा थोड़ा जल,अपने परिजन छिड़क दें तो उन छींटों से उनके घड़े में घाटा न आवेगा, पर यह पौदा उन सद्भाव मयी बूंदों के द्वारा नवजीवन धारण करके कुछ ही समय में परिपुष्ट वृक्ष बन जावेगा।

इच्छा होने पर कठिनाईकी स्थिति में भी मनुष्य थोड़ा बहुत दे सकता है। अनिच्छा होने पर बडी धनराशि का स्वामित्व होने पर भी कुछ त्याग नहीं बन पड़ता। हम अपने साथियों, स्वजनों, कुटुम्बियों, पाठकों के उच्च अन्तःकरण में निवास करने वाली सद्भावना को इन पंक्तियों द्वारा जागृत करते हैं। और ज्ञान यज्ञ के महत्व पूर्ण आयोजन के लिए सहायता प्राप्त करने की आशा करते हैं। हमें विश्वास है कि हमारे आत्मीयजनों का उच्च अन्तःकरण उन्हें अखण्ड-ज्योति के प्रेस फण्ड के लिए कुछ न कुछ भेजने को अवश्य प्रेरित करेगा और इसी वर्ष प्रेस की स्थापना होजायगी। प्राप्त हुई सहायताऐं अखंण्ड-ज्योति में प्रकाशित की जावेंगी।

———

दुखी सदा को ? विषयानुरागी

(श्रीमती प्रीतमदेवी महेन्द्र साहित्यरत्न)

श्री मद्भागवत्में एक स्थान पर कथा लिखी है- अवधूत ने २४ गुरुओं में चील को भी एक गुरु माना था। चील के मुख में मांस था, इसीलिए सहस्रों कौए उसे घेरे फिरते थे। जिस ओर वह चील मांस को मुख में लिए हुए जाती थी, उधर ही कांव कॉंव करते हुए भी उसके पीछे पीछे भागते थे। जब चील के मुख से हठात मांस का टुकड़ा नीचे गिर पड़ा, तब सारे कौए उस मांस की ओर चले गए, फिर उनमें से कोई भी चील की ओर नहीं गया।

मॉंस से यहां अभिप्राय है, भोग के पदार्थों से। कौए चिंता और भावनाएँ हैं। जहां जहां भोग है, वहीं वहीं भावना और चिन्ताएँ हैं। भोग त्याग करते ही शान्ति प्राप्त हो जाती है। इसके विपरीत जितना भोगमें लिप्त होते हैं, जितनी सांसारिक आवश्यकताएँ बढाते हैं, उतने ही संसार के कुचक्र में फँसते जाते हैं। प्रत्यक आवश्यकता एक बन्धन है। जिसकी जितनी आवश्यकताएँ हैं, उस बेचारे के जिम्मे उतने ही बन्धन हैं। जिसकी जितनी कम जरूरतें हैं, वह उसी अनुपात में दूसरे की अपेक्षा सुखी है। सांसारिक पुरुषों का मन सदा वासनात्मक विचारों, पहलुओं, कल्पनाओं, भोगों को ही ग्रहण करने के लिए उद्यत रहता है। वह सूक्ष्म दार्शनिक भावोंको ग्रहण नहीं कर सकता वह शिथिल होता है और उसकी गति दार्शनिक भावों को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त नहीं होती।

संसारके विषय भोग कभी तृप्त नहीं होते,अग्नि में घृत डालने के समान ही सदा बढते जाते हैं। अतः भोगसे दूर रहने में ही भला है। मन निष्काम कर्म, जप, प्राणायाम और दूसरे आध्यात्मिक साधनों से शुद्ध किया जा सकता है। चित्त शुद्धि के साथ दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन स्वयमेव एक प्रकार की समाधी है क्योंकि मन इन प्रक्रियाओं से भोग से मुक्त रहता है। कठिन तप साधन करो। तप से वासनाएँ दग्ध हो जातीं हैं और मन का संयम होता है। मन का संयम ही सच्ची सिद्धि है।

सुख दुःख के साथी।

(लेखक—श्रीयुत महेश वर्मा)

सन् १९१२ में टाईटेनिक नाम का एक बहुत बड़ा जहाज डूबा था। उसके साथ जो थोड़ी सी स्त्रियां डूबीं थीं, उनमें से एक श्रीमती हसाडार स्टास भी थीं। उसके डूबने का कारण यह था कि वह अपने पति को नहीं छोड़ सकती थीं। प्रेम, तथा पारस्परिक सहानुभूतिकी यह कहानी इस प्रकार है-

उस दिन रात से ही जहाज में पानी आ रहा था मल्लाह तथा कप्तान अस्त व्यस्त हो इधर से उधर दौड़ रहे थे। जहाजके बचने की कोई आशा न थी। कम से कम स्त्रियों की जान बचा दी जाय—ऐसा सोचकर लाइफ बोटें उतारी जा रहीं थीं मुसाफिर स्त्रियां घबराहट में लाइफ बोटों पर बैठ रहीं थीं। स्त्रियां काफी मात्रा में थीं अतः कुछ ही चुने हुए पुरुष लिए जा सकते थे। श्रीयुत स्टास इन चुने गये भाग्यशाली पुरुष मुसाफिरों में न आ सके। वे चुपचाप एक ओर शान्तमुद्रा से खड़े थे और यथा सम्भव भयभीत स्त्रियों तथा बच्चों को लाइफ बोटों में बैठने में सहायता दे रहे थे। वे बार बार अपनी पत्नि को किसी लाइफ बोट में बैठकर प्राण रक्षा करने के लिए विवश कर रहे थे वह बुढिया किसी प्रकार मानती ही न थी। श्रीयुत स्टास ने अन्त में अपनी प्यारी पत्नि की प्राण रक्षा के लिए उसे बलपूर्वक पकड़ कर नाव में धकेल दिया और नाव चल दी। उन्हें सन्तोष था कि अन्त समय में वे पति प्रेम की जिम्मेदारी का निभाव कर सके हैं। अपने बलिदान पर उन्हें सन्तोष था।

परन्तु 'अरे! यह क्या'? उनके मुख से निकल गया। उनकी बूढी पत्नि गीले कपड़ों, हांफती हुई जहाज के तख्ते पर चढ रही थी। उसमें न जाने कैसा बल आ गया था। इसके पूर्व कि उसका पति वहाँ तक पहुँच सके, वह डेकपर आचढी। वहाँ उसने अपने पति की बाँह पकड़कर अपनी बगल के साथ लपेट लीं और बोली – 'हम वर्षों प्रेम और दुःख में इकट्ठे रहे हैं क्या अब मृत्यु समय में साथ न रहेंगे?

आपकी आकांक्षाएं शुभ हों

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
गीता ४।११

जो मुझको जिस रीति से भजता है मैं उसको उसी के अनुसार भजता हूँ। अर्थात् मुझको जो जैसा भजता है उसको मैं वैसा ही फल देता हूँ।

अर्थात् ईश्वर यह कहता है कि जो मुझको उत्तम भाव से देखता है उसको मैं उत्तम फल देता हूं। जो मध्यम भाव से भजता है उसे मध्यम फल देता हूं। और जो अधम भाव से भजता है उसे अधम फल देता हूं। यह कहकर ईश्वर हमको समझाता है कि कैसा लेना तुम्हारे हाथ में है। अगर अच्छा फल चाहो तो वह भी ले सकते हो और खराब फल चाहो तो वह भी ले सकते हो। तुमको अच्छा फल देना मेरी मर्जी पर नहीं है। मैं तो सिर्फ तुम्हारी भावना के अनुसार अर्थात तुम्हारी इच्छा के अनुसार, तुम्हारे विचार के अनुसार और तुम्हारे काम के अनुसार तुमको फल देता हूं। अगर तुम्हारी इच्छा और तुम्हारे विचार तथा तुम्हारे काम अच्छे हों तो तुम्हें अच्छा फल मिलेगा और तुम्हारी इच्छा तुम्हारे विचार और तुम्हारे खराब काम हों तो वो तुम्हें खराब फल मिलेगा। क्योंकि अच्छा या बुरा फल ईश्वर कुछ अपनी इच्छा से हमको नहीं देता बल्कि हमारी भावना के अनुसार देता है। इसलिए हमको अपनी भावना सुधारनी चाहिये। और याद रखना कि अपनी भावना सुधारना ही अपना भाग्य फेरने की कुंजी है। इसीसे महात्मा वशिष्ठमुनि ने भगवान् रामचन्द्रजी को उपदेश देते समय बतलाया है कि कि ज्ञान की सात कोटियां हैं। उनमें सबसे पहिली शुभेच्छा है। याद रखना कि पहले शुभेच्छा आने के बाद ही ज्ञान की दूसरी सीढी पर चढ़ सकते है क्योंकि शुभेच्छा ही स्वर्ग का मार्ग है और शुभेच्छा ही अपना भाग्य फेरने की कुंजी है इसलिए पहिले के पवित्र पुरुष हमेशा सवेरे उठकर ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः 'सर्वे सन्तु निरामयाः।
"सर्वेभद्राणि पश्यन्तु 'मा कश्चिदुःखमाप्नुयात्॥

सब जीव सुखी रहें, किसी जीव को किसी तरह का जरा भी दुःख न हो, सबका कल्याण हो और कोई भी दुःखी न हो।

इस प्रकार महात्मा लोग हमेशा सबका कल्याण चाहते थे और ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे कि हे प्रभु हमको सद्बुद्धि दो। ऋषियों का बड़े से बड़ा मन्त्र गायत्री है। गायत्री हिन्दू का धर्म का बड़ से बड़ा मन्त्र है। और सबेरे, दोपहर और शामको, दिन में तीन बार उसका जप करने की शास्त्र में विधि है। इस मन्त्र का अर्थ क्या है? यह आपको मालूम है? इसका संक्षेप से संक्षेप सहज से सहज और सार अर्थ इतना ही है कि-ईश्वर हमको सद्बुद्धि दो।

त्रिकालदर्शी पवित्र से पवित्र और चतुर से चतुर हमारे पूर्वजों ने ईश्वर से और कुछ नहीं मांगा, इतना ही मांगा कि हे प्रभु। हमको सद्बुद्धि दो क्योंकि सद्बुद्धि भाग्य फेरने की कुंजी है सद्बुद्धि में सब तरह की उन्नति है सद्बुद्धि में स्वर्ग है। सद्बुद्धि में देवत्व है, और सद्बुद्धि में सब तरह की शिल्प कला है। और सद्बुद्धि में आप ईश्वर है और ईश्वर ज्ञान स्वरूप है इस लिए सद्बुद्धि सबसे बड़ी बात है। और याद रखना कि सबका भला हो ऐसी शुभेच्छा रखने से ही सद्बुद्धि खिल सकती इसलिए शुभेच्छा हमारे धर्म की पहिली सीढी है। शुभेच्छा ज्ञान का दरबाजा और शुभेच्छा हमारा भाग्य फेरने की कुंजी है। अगर अपने भाग्यको अच्छा बनाना हो तो पहले शुभेच्छा रखना सीखना चाहिये!

धोखा देना ससार को सबसे बडी निर्बलता है छल कपट करना संसार की सबसे बडी मूर्खता है। क्योंकि धोखेवाजी से जितना लाभ उठाने की कोई व्यक्ति आशा करते हैं उससे अनेकों गुनी हानि उन्हें उठानी पड़ती है।

परमार्थी विश्व में स्वार्थी मानव

(पु० श्री०प्रतापनारायणजी 'कविरत्न')

काम क्या खुदके आते वे, भूख बस औरों की हरते।
दूसरों के ही लिए सदा, पेड हैं फल पैदा करते ॥
रक्त-सा अपना रस देते, लुटेरे भौंरों को भी तो।
फूल मर मिटते हैं यों ही, गंध दे-देकर औरों को ॥

पान खुद कभी नहीं खाती, बढी है अशुभों को हरने।
खड़ी है नागरबेल यहां, पराया मुख शोभित करने ॥
बोल अनमोल बोल करके, स्वयं को नहीं रिझाती है।
कोकिला औरों के हित ही, सुधा का स्रोत बहाती है ॥

निरा पशु होकर भी बनता, बिछौना, पर-हित में मरता।
प्राणहर-मृगमद को भी तो, सर्वदा मृग पैदा करता ॥
पहनता-खाता सिन्धु नहीं, खजाने औरों के भरता।
सजाने औरों को ही वह, मोतियों को पैदा करता ॥

लाभ करते हैं औरों का, ताप हरते हर्षा-हर्षा।
कभी भी अपने लिये नहीं, मेघ वर्षाते हैं वर्षा ॥
पराया हित करने को ही, चमकते सूर्य, चन्द्र, तारे।
और यह पृथ्वी-माता भी, झेलती कष्टों को सारे ॥

लकड़ियों, नदियों, खानों को, धातुओं को भी जनने में।
हिमालय को है क्या मीठा, ढाल भारत की बनने में ॥
प्यास अपनी न बुझाती है, आफतें लाखों सहती है।
भला औरों का करने ही, भला यह गङ्गा बहती है ॥

अधूरे ज्ञानवान जो हैं, हाल यह उनका है सारा।
दशा पर उनकी तो देखो, जिन्होंने मानव तन धारा ॥
नहीं सम्हले लख चौरासी, योनियां खोकर के भी जो।
गए-बीते हैं पशुओं से, आदमी होकर के भी जो ॥

स्वार्थ से सने हुए रहते, एक-को-एक तारहा है।
मर रहे अपने मतलब में एक-को एक खा रहा है ॥
आज हम पर-हित-चिन्तनमें, हो गए सब जीवोंमें कम।
आपके पार लगाए हो, नाथ ! अब पार लगेंगे हम ॥

—कल्याण